सूची पृष्ठ

प्रथम संस्करण, अप्रैल १९४

मूल्य एक रुपया

प्रकाशक
कृष्णानन्दन प्रसाद
तरुण कार्यालय, इलाहाबाद

मुद्रक—
ए० वी० वर्मा,
शारदा प्रेस, प्रयाग

मुनमुन

"मुनमुन ! मुनमुन, !" तुतली सी भाषा मे पुकारता हुआ वह चार बरस का लडका बकरी के काले कनकटे बच्चे के पीछे दौड़ रहा था। मुनमुन उमङ्ग मे कूदता-उछलता, कभी लड़के की ओर देखता, पास आता, फिर छलॉगें मारकर चक्कर काटने लगता। लड़का उसे पुचकारकर, हाथ की मिठाई दिखाकर, ललचाकर अपने पास बुलाना चाहता—उसे पकड़ कर गले लगाने की उसकी बड़ी अभिलाषा हो रही थी। परन्तु वह नटखट मुनमुन लड़के के बहलावे मे नही आना चाहता था। ज्यो-ज्यो वह मुन्डा लड़का अपनी हल्दी मे रॅगी धोती सॅभालता हुआ उसके पीछे दौड़ता त्यो-त्यो वह मुनमुन उसे और मैदान दिखाता था। इसी बीच लड़के के और साथी आ पहुॅचे।

साथियो ने लड़के को घेर लिया। सभी उसे आदर और सद्‌भाव से देखने लगे, जैसे वही अकेला उन सबके बीच भाग्य-वान हो। नंगे-धड़गे, धूल-धूसरित एक लडके ने उसकी ओर ईर्ष्या भरी, ललचाई ऑंखो से देखकर कहा, "माधो ! तुम्हे तो बड़ी अच्छी-अच्छी चीजें मिलती है जी !" और वह अपने साथियो की ओर इसके समर्थन की आशा से देखने लगा। माधो के हृदय पर गर्व का प्रभाव अवश्य हो उठा। उसने अभिमान से, और मुॅह बिचकाकर, सिर हिलाकर कहा, "हमारा मुण्डन नही हुआ है ! यह देखो, यह पीली धोती, यह मिठाई; और नही तो क्या तुम्हारा कही मुण्डन हुआ है ? तुम्हारा होगा तो तुम्हे भी मिलेगा।" प्रश्नकर्त्ता अपने भाग्य पर अवश्य दुखी हो उठा

होगा, इसीसे वह चुप हो गया। पर उसका एक साथी अनुभवी था। उसने कहा, "क्यों नही और जब 'कुच' स कान छेदा गया होगा, तब मालूम पड़ा होगा मिठाई और धोती का मतलब !" उसने नव-मुण्डित लड़के के कानो की बाली की ओर इशारा करके कहा—कुछ व्यङ्ग से, कुछ अनुभवी के अभिमान से।

सब लड़के निकट पहुँचकर माधो के कानो की परीक्षा करने लगे। कानो की लुरकी मे पीतल की छोटी बाली छेदकर पहनाई गई थी। छेदन-क्रिया अभी दो ही दिन पूर्व हुई थी, इसीसे कान सूजे हुए थे और बालियो की जड़ मे रुधिर के सूखे हुए विन्दु वर्तमान थे। परीक्षा करते-करते एक चिलबिले बालक ने उसे छू दिया माधो 'सी' करके हट गया, उसकी आँखें सजल हो गई। लड़का अपनी धृष्टता पर लज्जित और भयभीत हो गया। उसके साथी भी आशङ्कित हो चुप हो गये। सौभाग्यशाली, सम्पन्न घर के लड़के की पीड़ा का अनुभव उसके ग़रीब साथी अवश्य करते है। माधो चुप-चाप अपने कानो की बात सोच रहा था और उसकी पीड़ा की मात्रा से मुनमुन के कष्ट की मात्रा का अन्दाज़ लगा रहा था।

वह सोचता था, "मेरे कान तो ज़रा छेदे ही गये हैं; पर उस बेचारे का तो एक कान थोड़ा-सा काट ही लिया गया।" कान काटने पर कान छेदने से दर्द ज़रूर कुछ अधिक होता होगा— यह उसके बाल-मस्तिष्क की तर्क-शक्ति ने निश्चय किया। वह मुनमुन के प्रति स्नेह और सहानुभूति के भाव से भर गया। उसे इच्छा हुई मुनमुन को पकड़ कर प्यार करने और उसके कानो की परीक्षा करने की।

मुनमुन अपनी मा के थन मे मुँह मारता हुआ, अपनी छोटी दुम हिलाता हुआ, तन्मयता से दूध पी रहा था। उसकी मा जुगाली करती हुई कभी-कभी रुककर प्रेम और सन्तोष-भरी दृष्टि से अप

वच्चे को देख लेती, सूँघ लेती थी। माधो ने सोचा इस से मुनमुन को पकडने का अच्छा अवसर है। उसने अपनी इच्छा अपने साथियो से प्रकट की। बाल-सेना तुरन्त इस काम के लिए तैयार हो गई। घेरा डाल दिया गया, मुनमुन गिरफ्तार हो गया, फरार असामी पकड़ लिया गया। किसी ने अगली टाँगें पकड़ी, किसी ने पिछली। माधो ने उसके गले मे अपनी छोटी बाँहें डाल दीं। सब उसे लेकर आँगन मे सूखने के लिए डाले गये पुआल के 'पैर' पर पहुँचे और वहाँ बैठकर सब मुनमुन का आदर सत्कार करने लगे। मुनमुन की मा बच्चो को सचेत करने के लिए कभी-कभी उनकी ओर देखकर "मे ! मे !" कर देती, मानो वह कहना चाहती हो, "बच्चो ! देखो मुनमुन का कान न दुखाना।"

मुनमुन अपनी आव-भगत और लाड़-प्यार से जैसे ऊब रहा था। मनुष्यो के प्यार की निस्सारता जैसे वह अज-पुत्र ख़ूब समझता हो। वह अच्छी तरह कसकर पकड़े जाने पर भी अवसर पाकर कूद-फाँद मचाकर भागने का प्रयत्न करता—विवशता मे "मे ! मे !" कर माँ को पुकारता, लाचार हो आँखें मूँदकर चुप हो जाता। लड़के उसे कुछ खिलाने की नीयत से उसका मुँह खोलना चाहते : वह दाँत बैठा लेता। वे उसे पुचकारते : वह अनसुनी कर देता। वे पीठ पर हाथ फेरते : वह हाथ नहीं रखने देता। पता नहीं, उस छोटे बकरे के अल्प-जीवन की किस घटना ने उसे मनुष्यों से शकित कर दिया था !

संसार में अज्ञान अथवा अभ्यास ही भय की गुरुता की उपेक्षा वा अपेक्षा का कारण होता है। मुनमुन ने धीरे-धीरे अभ्यास से, आशका के महत्त्व को अपेक्षणीय वस्तु समझना सीखा। अब वह अभ्यस्त हो गया था, बच्चो के उपद्रवो का सामना करने मे। धीरे-धीरे उसके जीवन मे नित्य ये उपद्रव इतनी

बार घटने लगे कि वह उनके प्रति एक प्रकार की ममता का अनुभव करने लगा। उसे भी अच्छा लगता उन बच्चो का उसे दौड़ाना, दौड़ाकर पकड़ना, पकड़कर उसकी साँसत करना, उसकी पीठ पर चढ़ना, उसके कान पकड़कर उसे खेत की ओर ले जाना, मुँह खोलकर बल-पूर्वक उसमे कुछ खाने की चीजें ठूँस देना। बच्चो के साथ इस प्रकार उसके कई वर्ष बीत गये, अब वह उन्हे एक-एक कर पहचानने भी लगा था। उसके अज-मस्तिष्क मे बच्चो के व्यक्तित्व की कल्पना निर्गुण रूप में न रहकर सगुण रूप मे रहने लगी। इसका प्रमाण उसका आचरण था। वह उस बाल-समुदाय मे से माधो को तुरन्त पहचान लेता, उसके पास वह विना बुलाये ही, उपेक्षा करने पर भी, बार बार हटाये जाने पर भी जा पहुँचता था। उसके अन्य साथियो मे से वह उनके गुण और अच्छे-बुरे आचरणो के अनुसार, उसी मात्रा मे उनसे स्नेह वा निर्लिप्सा प्रदर्शन करता। इसीसे हम कहते हैं कि वह बकरी का बच्चा भी मनुष्यो की परख कर सकता था।

माधो और मुनमुन की मैत्री अब कुछ-कुछ आध्यात्मिक स्नेह की सीमा तक पहुँच रही थी; इसे कहते हमे सकोच नही होता। बकरे अध्यात्म या उसके किसी रूप का साक्षात करने के अधिकारी है या नही—यह प्रश्न ही दूसरा है। परन्तु हमारे देखने मे वह मुनमुन अपने साथी माधव के हृदय के भावो को समझने मे समर्थ होता था; समझने की चेष्टा करता था; और उसके प्रति सहानुभूति रखने लगा था। लड़का जब माता पिता की डाँट खाकर, अपनी किताबें ले, एक कोने मे पहुँच, दुखी होकर, उन्हे उलटकर उनकी आवृत्ति करने बैठता, तो उस समय मुनमुन उसके पास पहुँच, उसकी पीठ से अपनी पीठ रगड़, उसे मनाता और अवसर पाकर उसकी पुस्तक हड़प करने की चेष्टा करता। माधो के छीनने पर, वह इस प्रकार भाव-भरी आंखो से उसकी ओर

देखता, मानो कह रहा हो, "माधो! इन्हे मुझे खा जाने दो, ये मेरे ही योग्य हैं। इन सफेद, नीरस पत्तो पर रँगे हुए चिन्हो मे तुम्हारे लिए देखने की कोई वस्तु नही है। इनका उचित स्थान मेरा उदर ही है। चलो हम दोनो, कही दूर, इन बखेड़ों से दूर, किसी ऐसे स्थान मे चलें, जहाँ केवल मै हूँ, तुम हो। तुम मेरी पीठ पर चढ़कर मुझे दौड़ाना, मै तुम्हे प्रसन्न करने के लिए छलाँगें भरूँगा। तुम मुझे हरी-हरी घास खिलाना, मैं तुम्हारी गोद मे मुँह डालकर आँखें मूँद लूँगा और तुम मेरी पीठ पर सिर टेक कर सुख से विश्राम करना।" मुनमुन की बातें हम समझें या न समझें (हम समझदार ठहरे) पर माधो के लिए उसकी मूक वाणी हृदय की भाषा थी।

माधो माता-पिता के दण्ड को भूलकर मुनमुन के साथ घर से निकल जाता। फिर दिन भर वह बाग़-बाग़, खेत-खेत, उसे लिये हुए चक्कर काटता। मुनमुन तो हरी-हरी घास देख खाने से नहीं चूकता, पर माधो का जैसे मुनमुन को भर पेट खिलाने ही मे पेट भर जाता था। उसकी भूख-प्यास जैसे उस काले कनकटे मुनमुन के रहते उसे सताने का साहस न कर पाती थी।

मुनमुन की आयु अब महीनो की माप से बढ़कर वर्षों में आँकी जाने लगी। माधो सात साल का हुआ। मुनमुन छत्तीस मास ही का था पर वह माधो से अधिक बलिष्ठ, चतुर और फुर्तीला था। कभी-कभी जब दोनो मे रस्साकशी होती तो मुनमुन माधो को घसीट ले जाता। पर यह सब केवल विनोद या खीचा-तानी के लिए ही होता था। यो कभी माधो को मुनमुन ने दिक नही किया। वह उसके पीछे फिरता; वह उसके पीछे लगा रहता। दोनो ऐसे हिले-मिले थे, मानो पहिले के परिचित हो।

मुनमुन को देखकर जब माधो के साथी लड़के उसकी प्रशसा करते, "अजी, इसके सीग कैसे सुन्दर है। ज़रा-सा तेल

लगा दिया करो माधो ! इसके बाल कैसे चमकते हैं, जी ! हाथ फेरने मे बड़ा अच्छा लगता है । अजी माधो ! ख़ूब तैयार है तुम्हारा मुनमुन ।—" और वे माधो की ओर, अपनी सौन्दर्य-प्रियता की अनुभूति से प्रेरित होकर, इस आशा से देखते, जैसे माधो यदि उन्हे ऐसा कहने और अपने मुनमुन को प्यार करने से रोकेगा नही तो वे अपने को धन्य समझेंगे। माधो अपने मुनमुन की प्रशंसा सुनता तो उसके हृदय मे मुनमुन के प्रति स्नेह की आग प्रबल हो उठती। उसके जी मे एक अज्ञात गुदगुदी होती। वह लपककर मुनमुन को गले लगाकर चूमने और प्यार करने लगता। ऐसे अवसर पर उसके बाल-साथी मुनमुन को सुहलाने की अपनी साध पूरी करने से नही चूकते। नैसर्गिक सौन्दर्य-प्रियता और निस्स्वार्थ-प्रेम के ये भाव बच्चो को अपने को भूल जाने में सहायक होते। वे तन्मय होकर माधो के मुनमुन की सेवा-सूश्रूषा मे लग जाते। उनका मुनमुन के प्रति, स्नेह और सहानुभूति भक्तो की भक्ति से कम न थी।

मुनमुन पर सभी छोटे-बड़े की आँखें लगी थी। अपनी-अपनी भावना के अनुसार सब उसे अपनी आँखो से देखते; परन्तु मुनमुन ने जैसे कभी इसकी परवाह ही नही की। वह मस्त रहता अपने चरने-फिरने और कुलेल करने मे। उसे किसी की दृष्टि और कुदृष्टि की आशंका जैसे थी ही नही। माधो के रहते उसने कभी इस विषय पर सोचने की आवश्यकता ही न समझी।

मुनमुन के जन्म के पश्चात उसकी माता, बकरी, ने कम-से-कम एक दर्जन बच्चे दिये होंगे। उसकी माता की कई पीढ़ियो ने इसी प्रकार बच्चे और दूध देकर अनेक वर्षों से अपने स्वामी के कुल की सेवा मे अपने कुल की मर्यादा बनाये रखी थी। मुनमुन की माँ अपने उदर के अनेक शिशुओं मे केवल मुनमुन

ही को देखकर मानो इसका साक्षात् अनुभव कर सकी थी, कि उसके बच्चे भी इतने बड़े हो सकते थे। नहीं तो उसने यही समझा था, कि जीवन मे उसका धर्म केवल बच्चे देना, दूध देना—और इसी मे सफल-मनोरथ होने के लिए खाना, पीना और निश्चित जुगाली करना है।

मुनमुन को अब अपनी माता से उतना सरोकार न रहता और इसीसे कदाचित् उसके प्रति उसका उतना स्नेह नहीं दिखाई पड़ता, जितना कि जन्म के बाद कुछ महीनो तक था। परन्तु उस बूढ़ी बकरी के हृदय मे जैसे अब भी मुनमुन के प्रति कोई भाव छिपा था। वह उसे माधो के साथ खेलते या धूप मे चारपाई पर लेटे देख, जैसे संतोष की आँखो से दोनो को निहार कर आशीर्वाद देती थी। मुनमुन कभी-कभी उसके पास पहुँचकर उसकी नाँद से कुछ भूसी-चोकर खा लेता। वह छीन-झपटकर खाने मे अपने धर्म की मर्यादा समझता और उसकी माँ उसकी सीनाज़ोरी पर उदासीनता प्रकट करती हुई सतोष से जुगाली करना ही अपना कर्तव्य समझती थी।

मुनमुन की ख़ातिर कभी-कभी माधो भी उसकी माँ की देख-भाल किया करता। उसकी इच्छा होती कि फिर मुनमुन अपने बचपन की भाँति अपनी माँ का दूध पीता। कभी-कभी वह उसे पकड़कर, उसका मुँह माँ के थन तक लगा देता; पर मुनमुन उसे अपने छोटे भाइयो का अधिकार समझ उससे मुँह फेर लेता था। माधो का मानुषी हृदय उस गुप्त भाव का कदाचित् अनुमान नही कर पाता था—संभव है, कभी समझ मे आये। परन्तु उस समय इसे वह मुनमुन की धृष्टता और अपने स्वामी की इच्छा की अवहेलना समझता था, और इसी के आधार पर वह अपनी न्याय-वृत्ति के अनुसार मुनमुन को दण्ड भी देता। उसका दण्ड मुनमुन प्रसन्नता से स्वीकार करता। और दण्ड ही क्या

होता—छोटे-छोटे हाथो के दो एक थप्पड़ या पीठ पर दो एक घूँसे। मुनमुन इन दण्ड-प्रहारो पर केवल अपना सहर्ष 'स्वीकार' प्रदर्शन करता और उसके पश्चात् मानो उसके प्रायश्चित मे अपना शरीर हिलाकर वह गर्द झाड़ देता या सिर हिला कर अपने सींग नीचे कर देता। फिर दण्डित और दण्ड-विधायक दोनों मित्र की भाँति किसी ओर विचरण करने चल देते।

इस प्रकार कुछ दिन और बीते। माधो अब आठ बरस का हो गया। उसका मुनमुन चार साल का पट्ठा हुआ। दोनो देखने मे सुन्दर लगते। माधो को देखकर उसका पिता प्रसन्न होता, माँ अपने को धन्य समझती। दोनो के मन मे आशा का दीपक और भी प्रकाशमान होता हुआ जान पड़ता। मुनमुन की बूढ़ी माँ अब और भी बूढ़ी हो चली थी। अब वह दूध न देती; उसके बच्चे न होते। यदि बकरी की माँ को भी कोई अधिकार अपने बच्चो पर है तो उसी अधिकार से वह भी अपने मुनमुन को देखती, उसे देखकर सुखी होती थी। वह कुछ सोचती थी या नहीं। पर उसकी मुद्रा से यह भाव प्रकट हो सकता था कि वह अपने बुढ़ापे मे अपनी आँखों के सामने अपनी एक सन्तान को देखकर सुखी थी; और यदि पशु को भी परमात्मा का स्मरण करने का अधिकार है, तो वह निश्चय उस समय परमात्मा का स्मरण करती थी, जब उसे और लोग पुआल पर बैठी, आँखें मूँदे जुगाली करते हुए देखते थे। उसके परमात्मा का क्या रूप था, हम नही कह सकते—परन्तु यह निश्चय है कि उस पशु की कल्पना मे परमात्मा का आकार, मनुष्य-सा कदापि न होगा! क्यो ? इसका उत्तर वह बकरी या उसकी सन्तान दे सकेगी!

माधो मुनमुन को गाड़ी मे जोतने का स्वप्न देखने लगा। वह सोचता था, "यदि एक गाड़ी हो जाय तो मैं मुनमुन को जोतकर सैर करने निकलूँ।" उस समय उसके अन्य साथी

उसकी ओर किन आँखों से देखेंगे—इसकी कल्पना वह बालक कर लेता था और उसी कल्पना के परिणाम-स्वरूप अपने हृदय मे आई हुई प्रसन्नता से विह्वल होकर, वह पिता से गाड़ी वनवा देने का आग्रह करता—नित्य अपने प्रस्ताव को कार्यरूप मे परिणत होते देखने की इच्छा करता। पिता 'नाहीं' नही करता; पर मुनमुन को वह ऐसे अवसर पर ऐसी आँखो से देखता, जैसे वह सोचता हो कि "यही इस झगड़े का घर है।"

मुनमुन ने मनुष्यो की भाषा सीखने या समझने का प्रयत्न नहीं किया यद्यपि वह इन्ही के बीच रहता आया था। तो भी वह उनकी छिपी हुई हृदय की भावनाएँ जैसे भॉपने के योग्य हो गया था। इधर कुछ दिनो से उसे ऐसा जान पडा, मानो उसके प्रति लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट हो रहा हो। उसे देखकर लोग आपस मे कुछ कहते-सुनते थे—कभी कभी उसे उठाकर उसके बोझ का जैसे अन्दाज़ भी लोग लगा लेते थे। मालिक के घर में भी कुछ ऐसी तैयारियॉ या नित्य के साधारण वातावरण मे परिवर्तन होते दिखाई देने लगे, जिसे देख मुनमुन को अपने वचपन के किसी कटु अनुभव की स्मृति कष्ट देने लगतीं। स्मृति वहुत धुँधली और मन्द हो चुकी थी। उसकी पीड़ा की मात्रा यद्यपि अधिक न थी, पर तो भी कारण उसके हृदय मे एक ऐसी आशंका का उदय होते दीख पडा, जिसे मुनमुन का मस्तिष्क सुलझा न सका। वह इसी हेतु कुछ चौका हुआ, कुछ आशङ्कित सा रहने लगा। माधो यह वात न समझ सका। वह कैसे समझता; कान तो एक ही वार छेदा जाता था, फिर क्या डर था। माधो ने अपने 'मुण्डन' मे मुनमुन के सिर मे सिन्दूर लगते, उसके गले में माला पड़ते देखा था। उसे प्रसन्नता हो रही थी कि उसके 'मुण्डन' पर फिर उसके मुनमुन का शृङ्गार होगा—उसकी पूजा होगी। वह उस पर प्रसन्न था

कि उसका मुनमुन इस बार बड़ा और सुन्दर-सा है । अब की बार वह स्वयं भी उसका शृङ्गार करेगा और उसे सजाकर वह उसको अपने साथियो को गर्व से दिखलायेगा ।

× × ×

कैसे क्या हुआ—हमने उस बलि-विधान को अपनी आँखो देखा नहीं । और देखकर भी हम देखने मे समर्थ न होते; पर दूसरे दिन प्रातःकाल हमने माधो को मुनमुन की खोज मे पागल की भाँति इधर-उधर घर के कोने कोने मे झाँकते देखा । द्वार पर नीम की शीतल छाया मे शहनाई बज रही थी, घर मे स्त्रियाँ मङ्गल-गान कर रही थी । बाहर बिरादरी के भोज की तैयारी मे नौकर-चाकर व्यस्त थे । जानकार चतुर रसोइये अपनी कार्य-कुशलता की डींग हाँक-हाँककर अच्छे-अच्छे व्यंजन बनाने का दावा कर रहे थे । छप्पर से छाये हुए, टट्टियो से घिरे चौपाल के एक कोने मे 'मुन्शी जी' चिलम फूँकते हुए चूल्हे पर चढ़े 'देग' की देख-रेख मे लगे थे । इधर कम लोग आते थे । माधो भी उधर आकर अपने मुनमुन की खोज नही पा सकता था । वह क्या समझता कि उसका मुनमुन इस समय देवी के चरणो मे गति पाकर, अपने शरीर को इस महोत्सव के अवसर पर आये हुए अतिथियो के सन्मुख 'प्रसाद' रूप मे अर्पण करने के निमित्त 'देग' मे जा छिपा है !

लोग अपनी-अपनी धुन मे मस्त थे । माधो अपने मुनमुन की खोज मे परीशान थी । वह किससे पूछता ! मुनमुन का पता उसे कौन बतलाता । क्या उसके घर वाले या उस समय वहाँ उपस्थित लोग उसे बतलाते ? यदि बतलाते, तो क्या बतलाते । बतलाकर क्या समझते ! माधो विक्षिप्त की भाँति भटकता हुआ बकरी के पास चला । मुनमुन की अनुपस्थिति मे उसे ऐसा जान पड़ा, मानो उसकी माँ ही उसे अपने बच्चे का पता बतला सकती

थी। वह बाड़े मे बँधे पशुओ के बीच से बचकर, कोने मे बँधी बकरी के पास पहुँचा। बकरी निश्चित बैठी 'पागुर' कर रही थी। उसके गले मे बाँहें डाल, उसकी रूखी भूरी पीठ पर सिर छिपाकर, माधो सिसक-सिसकर रोने लगा। उसकी अन्तर्वेदना की करुण पुकार किसी ने न सुन पाई। यदि कोई सुन सका होगा, तो वही बकरी या मनुष्यो का वह परमात्मा, जिसे वे सर्वत्र वर्तमान समझते है।

रोते-रोते माधो की हिचकियाँ बँध रही थीं। आँसुओ के कारण भीगी पीठ की आर्द्रता का अनुभव कर, वह बकरी कभी-कभी प्रश्नात्मक नेत्रो से माधो की ओर देखती। माधो उसकी आँखो से आँखें मिलते ही दुख से विह्वल हो उठता। वह मुनमुन के बिछोह से विकल हो तड़प-तड़प कर रोने लगता। उसके घर का वातावरण उत्सव के चहल-पहल और गाने-बजाने से मुखरित हो रहा था। वायु-मण्डल धूम और सुगन्ध से लदा था। एक ओर हवन के हव्य और आज्य की धूम-राशि, दूसरी ओर भोज के व्यञ्जनो की सोंधी सुगन्ध! इन सब से अप्रभावित वह बकरी बैठी जुगाली कर रही थी और माधो मुनमुन के लिए भूमि पर पड़ा तड़प रहा था, एक ने मानो मानव-समाज की हृदय-हीनता का आजीवन अनुभव कर दार्शनिक की उदासीनता प्राप्त की थी; और दूसरा? दूसरा मानो मानव-जाति की सभ्यता की बलि वेदी के प्रथम सोपान की ओर घसीटे जाने पर बकरी के बच्चे की भाँति छटपटा रहा था!

रेल की बात

इन्टर क्लास मे दाखिल होते ही ट्रेन चल पड़ी। हम लोग बैठने का स्थान ढूँढ़ने लगे। कोने मे एक तरफ पूरा बर्थ खाली पड़ा था। सामनेवाले बर्थ पर एक प्रौढ़ सफेद चद्दर बिछाये, लेटे अखबार पढ़ रहे थे। खिड़की से आती हुई हवा रह रह कर उनके खिचड़ी हो रहे पट्टे को लहरा देती थी।

मैने बर्थ पर बैठते हुए कहा—"मिस्टर यादव, सोने का तार कुछ देर मे लगेगा, अभी बिस्तर खोलने की आप तकलीफ न करें।"

मिस्टर यादव ने 'होल्ड-ऑल' ऊपर बर्थ पर ठूँसते हुए कहा—"मेरी बला से, तुम सोओ चाहे न सोओ, पर मै अब बैठ नहीं सकता। सवेरे से···"

"मालूम है," मैने कहा—"सवेरे से आपने बड़ी कमर-तोड़ मेहनत की है, पर आप क्या आज सो सकते है?"

वह मुझे खिड़की के पास ठेलकर सोने चला था, पर मैने उसे वैसा करने न दिया। आखिर, वह झुँझला उठा, बोला—"न सोऊँगा, मेरी बला से।" और उसने सिगरेट जला ली और मुस्तैदी से कश खीचने लगा।

धीरे-धीरे हम लोगो की बातें शुरू हुई, फिर बहस छिड़ गयी। यह नित्य का धन्धा था। हाँ, आज काफी फुर्सत थी—काफी इतमीनान था। बात साहित्य से आरम्भ हुई—राजनीति, समाज और धर्म से होती हुई वेश्याओ पर जा टिकी।

मैने कहा—"यह तुम्हारी धारणा बिलकुल ग़लत है कि वेश्याओ की समाज को ज़रूरत है। यह संस्था केवल हमारी सभ्यता के पतन की माप है।"

वह बोला—"पर आदिम काल से यह रहा है और रहेगा। और फिर समाज मे यदि यह न रहेगा तो हमारा गार्हस्थ्य जीवन कलुषित हो उठेगा—हमारी स्त्रियाँ भ्रष्ट हो उठेंगी।"

मैने ताव से कहा—"क्या बकते हो—" मेरे शब्दो मे सात्विक क्रोध आ गया था। सामने लेटे हुए सज्जन एकाएक चौक कर उठ बैठे। मैने एक ही झलक मे उनके रोबीले चेहरे और शरीफाना अन्दाज़ को भाँप लिया। मुझे ऐसा जान पड़ा, मानो वे हम लोगो के बीच दखल देने के लिए मजबूर हो रहे हो। पर वे केवल चुपचाप बैठकर फिर अपना अखबार पढ़ने लगे।

मिस्टर यादव ने व्यङ्ग करते हुए कहा—"मिस्टर 'पी', तुम चौंको चाहे जितना, पर समाज मे तुम सब को देवता नही बना सकते। मनुष्य तो मनुष्य है। वह अपनी कमज़ोरी को छोड़कर मनुष्य नही रह सकता।"

मैने सच्छिप्त प्रश्न किया—"आखिर आप कहते क्या हैं?"

"कहते क्या है—यही कि मानव-समाज मे कुछ ऐसे पुरुष, कुछ ऐसी स्त्रियाँ अवश्य रहेगी, जो 'सेक्स मोरैलिटी' के बन्धन से बँधी रहना नही चाहेगी। आख़िर उनके लिए कही जगह होनी चाहिए या नही।"

मैने उसे धिक्कारते हुए कहा—"तुम्हे शर्म आनी चाहिए इस विचार पर। क्या तुम कुछ चोरो के लिए कुछ ऐसे घर अरक्षित छोड़ दोगे जिसमे वे चोरी कर सकें।"

"मैं यह नही कहता, पर यदि तुम मनुष्यमात्र को सन्तुष्ट कर दो तो क्या तुम समझते हो वे चोरी न-करेंगे! चोरी का सम्बन्ध मानव-प्रकृति से है, धन-दौलत से नही- "

"ये बे सिर-पैर की बातें है मिस्टर—"

"सुनो मिस्टर 'पी', सेन्टीमेन्टल होने से काम नहीं चलता। मानव मनोविज्ञान के सिद्धान्तो की उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह असम्भव है कि जो वेश्या है उन्हे सुधारकर आप देवी बना सकें; जो लम्पट हैं उन्हे सच्चरित्र बनाया जा सके। भला इसी मे है कि वे जिस हालत मे है उन्हे पड़ा रहने दिया जाय।"

मैंने कहा—"देखो, 'सेन्टिमेन्ट' कोई बुरी चीज़ नहीं। यदि उसका उपयोग हो सके तो यह मनुष्य को देवता बना सकता है। जिसकी तुम हँसी उड़ाना चाहते हो उसी के आधार पर मनुष्य की महत्ता का प्रासाद खड़ा होता है। क्या तुम्हे यह बात आघात नही पहुँचाती कि वे वेश्याएँ हमारी ही बहू-बेटियाँ हैं। क्या उन्हे उसी हालत में देखने में तुम्हें कुछ भी ग्लानि नहीं होती?"

मिस्टर यादव ठहठहाकर हँस पड़े—"यदि मनुष्य इतना सेन्टिमेन्टल हो जायगा तो उसका अस्तित्व ही दुनिया से उठ जायगा। फिर तो आप गाय का दूध भी न पीयेंगे···"

वह जाने क्या-क्या कहने जा रहा था कि सामने वर्थ पर बैठे हुए सज्जन बोल उठे—"देखिए, आप लोग अभी मेरे सामने लड़के हैं। मेरे बीच मे दख़ल देने से बुरा तो न मानियेगा।"

हम दोनो एकटक उनकी तरफ देखने लगे। हम दोनो को कुछ नागवार-सा लगा। पर हम दोनो इस आशा से उनकी तरफ़ देखने लगे कि शायद हमारे ही पक्ष का वे समर्थन करनेवाले हो। हम दोनो के मुख से साथ ही निकला—"नही नहीं, बुरा मानने की कौन-सी बात है। यह तो साधारण-सी बहस थी।"

सामने वाले बर्थ पर बैठे हुए सज्जन कहने लगे—"आप देखते हैं, मेरी उम्र क्या होगी। अभी आप दोनों की उम्र मिला

कर मुझसे कम ही होगी। ज़्यादा से ज़्यादा आप लोगो की उम्र मिलाकर चालीस के होगी, मै पचास पार कर चुका हूँ और दो ही एक साल मे साठ को पहुँचता हूँ। फिर चाहे मै सठिया जाऊँ, पर अभी मै होश-हवास की बातें कर सकता हूँ।"

हम दोनो को हँसी सी आ गई, पर हम दोनो ने बड़े अदब से उसे दबाया और उनकी बातें सुनने लगे। वे अब डटकर बैठ गये थे और कह रहे थे—"आप लोग शहर के रहनेवाले है। मेरा रहना देहात मे होता है। हम लोग ज़िमीदार हैं। एक ज़माना था, जब मै भी आप लोगो की तरह जवान था, पर वह ज़माना और था। तब बीस साल की उम्र ज़्यादा नही समझी जाती थी। जब तक शादी न हो जाय, बच्चे न हो जायँ, बाप-माँ जिन्दा रहे, तब तक हम लोग बच्चे ही समझे जाते थे। दुनिया से हमे वास्ता न था, दुनिया के मसलो पर हम ग़ौर करने लायक न समझे जाते थे—"

हम लोग सुन रहे थे। बीच-बीच मे एक दूसरे को ऐसी नज़र से देख लेते थे कि यह कहाँ का पवाँरा छिड़ गया।

वे प्रौढ़ ज़िमीदार साहब कहने लगे—"देखिये, मैं अपनी आप-बीती सुनाता हूँ। उस वक्त मेरी उम्र आप ही के बराबर कोई बीस-इक्कीस की रही होगी। पर मै आपसे तगड़ा था, मस्त था, लापरवा था। हमारा काम था कुश्ती लड़ना, शिकार खेलना, गाना-बजाना, हँसी-मज़ाक। यह नही कि पढ़ने-लिखने से हमारा सरोकार न था, पर हमारी 'पढ़ाई' जीवन का उद्देश्य न था—केवल अलङ्कार था। मेरे लिए दो टीचर रक्खे गये थे। एक अङ्गरेज़ी पढ़ाता था, दूसरा तहज़ीब सिखलाता था। मुझे फोटोग्राफी का भी शौक था। मेरे मास्टर मुझे उसमे भी सहायता करते थे। उन दिनो मेरे पिता ज़िन्दा थे, मेरी शादी न हुई थी। एक दिन की बात है, मै बग़ल मे केमरा लटकाये, हाथ मे बन्दूक लिए

जङ्गल की तरफ निकल पड़ा था। सोचा था, अगर कुछ मिला तो शिकार करूँगा। नही तो नदी के तट पर बैठकर सुहावने दृश्य का फोटो लूँगा। हल्की-सी बदली थी। रहरह कर धूप निकल आती थी। बरसात का पहला पानी पड़ चुका था। दबी हुई धूल के बीच-बीच मे घास के अँखुए उभड़ रहे थे। खेतो मे किसान 'बिरवाही' मारने लगे थे।

"जब मै जङ्गल मे दाखिल हुआ उस समय चरवाहे अपने ढोरों को लेकर चराने पहुँच गये थे। गाय, भैस, और बकरियों के झुन्ड छिटके हुए चर रहे थे और उनके चराने वाले लड़के-लड़कियाँ अपना-अपना गिरोह बनाकर खेल रहे थे। मै उन्हे देखता हुआ आगे बढ़ गया। घने जङ्गल तक पहुँचने मे करीब आधे मील का रास्ता था।

"नदी तक पहुँचते-पहुँचते कई मोर भागकर झाड़ियो मे घुस गये, कई तीतर अपना बोलना भूल फुर से उड़ गये, कई खरगोश मेरा रास्ता काट गये। पर उनमे से एक पर भी वार न कर सका। आषाढ़ के आरम्भ की वह पुर्वाई हवा आलस पैदा कर रही थी। जब वह ज़मीन छूती हुई, लहराती हुई निकलती तो हृदय मे अजीब गुदगुदी होती। जी मे आता कि किसी वृक्ष की छाया मे लेट जाऊँ और आनन्द लूँ। चलते-चलते मै झाड़ियो से बाहर निकल गया। सामने महुए के वृक्ष हरे हरे पत्तों और फलो से लदे थे। डाल पर बैठे हुए पक्षी और शाखामृग फलो को कुतर-कुतरकर खाते-गिराते थे। कुछ दूर पर जङ्गली नदी टेढ़ी-मेढ़ी, बल खाती बह रही थी। मुझे यह दृश्य ऐसा भला लगा कि मै वहीं एक घने मधूक वृक्ष की छाया मे बैठ गया। बन्दूक एक तरफ़ डाल मैंने केमरा सीधा किया। कई एक स्नैपशॉट लिए। एकाएक अँधेरा हो जाने के कारण केमरे को बन्द कर देना पड़ा। देखा तो आसमान में बादल घने हो रहे

थे, हवा रुक रही थी। मैने अब लौट चलना मुनासिब समझा।

"मिस्टर, आप लोग शहरो मे रहते हैं, हम देहात के लोग सड़क और मोड़ का ध्यान नही रखते। हमे केवल दिशा का ज्ञान रहता है कि किधर जाना है और किधर जा रहे हैं। मैने जङ्गल से बाहर होना आरम्भ किया। महुए की बारी को पार न कर पाया था कि बूँदे पड़ने लगी। जितनी देर मे मै मैदान पार कर किनारे के बड़े बट वृक्ष के नीचे पहुँचू कि बड़ी-बड़ी बूँदो ने काफी भिगो दिया। मै उस सैकड़ो तनेवाले वृक्ष के बड़े तने से सटकर खड़ा हो गया। पानी घुमड़-घुमड़ कर बरसने कर लगा था। चिड़ियाँ प्रसन्न हो डालो पर बोलने लगी थी। बन्दर पानी मे भीगते हुए डालो पर उछल रहे थे और मै यह सब देखता हुआ भीगने से बचने के लिए वृक्ष के तने से सटा जा रहा था। इसी बीच मेरे कानो मे 'बिरहे' की मधुर तान पड़ी। जान पड़ा, मानो कोई पास ही गा रहा है। गले का सुरीलापन मेरे कानो से छिपा न रहा। उत्सुकता से मैने गानेवाले के लिए इधर-उधर आँखे दौड़ाई, पर कोई दिखाई न पड़ा। फिर मुझे ऐसा जान पड़ा मानो इसी बरगद के मोटे तने की ओट से वह आवाज़ आ रही है। मै घूम कर उधर जा पहुँचा। पहुँचते ही गाने वाला व्यक्ति शर्माकर चुप हो गया। मैंने देखा, एक पन्द्रह-सोलह बरस की लड़की भीगती हुई, दुबकी, शर्माई, नीची निगाह किये, बरगद के तने से सटी लाठी पकड़े खड़ी है। उसके भीगे हुए, फटे वस्त्रो के भीतर उसका कुन्दन-सा यौवन और जलवायु पर पला स्वास्थ्य छिप न सका। मुझे अब यह कहते शर्म सी लगती है कि मैने उसे सिर से पैर तक देखा। उसका शृङ्गारहीन केशकलाप, उसकी हिरनी सी आँखें, उसके रक्ताभ कपोल और पतले होठो को देखते ही बनता था। मैने पूछा—'तू किसकी लड़की है रे!' वह चुप रही। मैने डाँटकर ज़िमीदारी के रोब मे कहा, 'बोलती क्यों

२

नही।' वह धीरे से बोली—'मै इस गाँव की नही।' मैंने पूछा, 'तो फिर यहाँ कैसे आई ढोर चराने?' बोली, 'फूफा के घर आई हूँ, उन्हीं के ढोर है।' मैने पूछा, 'तेरा फूफा कहाँ रहता है?' 'आप के ही गाँव मे।' 'कौन है रे तेरा फूफा?'—मैंने फिर पूछा। उसने कहा, 'महावीर!' 'अच्छा तू महाबीर अहीर के यहाँ आई है। तब डरती क्यों है। बतलाती क्यो न थी?'—मै कह गया।

"उसने अब मेरी ओर देखा। मै नही कह सकता। पर मै मुस्करा पड़ा और उसने मुस्करा कर आँखे नीची कर ली। पानी कुछ थम रहा था फिर भी बरगद के पत्तो पर गिर कर वह 'पट-पट' शब्द कर रहा था। मै एक क्षण उसे फिर ऊपर से नीचे तक देखने से अपने को रोक न सका। मेरे मन मे आया, 'दैव की कैसी विडम्बना है। यह सुन्दर शरीर, ये कोमल अङ्ग और यह दरिद्रता—यह कठोर जीवन!' मैंने कहा, 'तू तो अच्छा गाती है रे! ज़रा सुना तो अपना गाना।' वह लज्जित होकर सिकुड़ गई। मैंने कहा, 'देख! एक बार गाना सुना दे तो तेरी तस्वीर खीच दूँ।' उसने इस असम्भव प्रलोभन पर मेरी तरफ़ जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा; मानो जानना चाहती हो कि क्या बन्दूक से तस्वीर भी खीची जाती है। मैंने केमरे के लटकते हुए थैले को दिखाकर कहा, 'इसमे है तस्वीर खीचने की मशीन।' उसने ग़ौर से देखा। मैंने चट केमरा निकाल लिया। दिखा कर बोला, 'अगर गाना सुना दे तो तेरी तस्वीर बना दूँगा।' पहले वह कुछ हिचकी, पर आग्रह करने पर, प्रलोभन देने पर उसने कान पर उँगली देकर ऊँची टेर से 'बिरहा' आरम्भ किया। उसकी आवाज़ मानो घने जङ्गल को चीरती हुई दिशाओ से टकराने लगी और उसकी टेर मेरे युवक हृदय मे हूक पैदा करने लगी। मै एकटक उसके मुखडे को देखता हुआ मन्त्रमुग्ध खड़ा था और वह आसावरी रागिनी की तरह विषैले सर्प से खेल रही थी।

"पानी थम गया। धूप फिर निकल आई। दूर पर किसी चरवाहे की टेर सुनाई दी—'मालती! ओ मलतिया!' उसने गाना रोक दिया, बोली—'हाँ—आई!' और वह चलने पर उद्यत हुई। मैने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया। रोककर बोला—'जाती है, तस्वीर नही खिचायेगी।' वह सहमी हुई बोली—'क्या ऐसे जल्दी खिचती है?' मैंने हाथ छोड़कर कहा, 'अच्छा फिर खीच दूँगा, तू तो पास ही रहती है।' सच बात तो यह थी कि एकाएक हाथ पकड़ने की अपनी धृष्टता पर मै अनमनस्क हो उठा था। उसने कहा, 'अच्छा भइया जी!' और वह लाठी के सहारे छलॉग मारती हुई चली गई जैसे हिरनी। मै जाने कितनी देर तक वहीं बरगद की जड़ के पास निर्विचार बैठा रहा, कह नही सकता। पर जब चलने का होश आया तब उस समय सूर्य सिर पर पहुँच रहा था।"

मिस्टर यादव दस मिनट बिना सिगरेट के नही बैठ सकते। दूसरा सिगरेट जलाकर उन्होने प्रौढ को भी पेश की। वे बोले—"क्षमा कीजिएगा, युवावस्था मे केवल एक बार मै अपनी इच्छाओ पर काबू न पा सका था, जिसका पछतावा आज तक मुझे बना है और इस ग़लती का दोप चाहे आप मुझे दें, चाहे मेरी युवावस्था को। मालती से मिलकर जब मै घर लौटा तो मेरा मन मेरे शरीर मे न था। यद्यपि ढूँढ़ने पर कोई इच्छा न दिखाई पड़ती, कोई अभाव नज़र न आता, पर ऑखो के सामने उस लड़की की तस्वीर खिची रहती। जी मे उसी को देखने की अभिलाषा होती। उसीसे बाते करने को जी तड़प रहा था। शाम हुई, मै टहलने निकल पड़ा। महावीर का घर रास्ते से कुछ हटकर पढ़ता था, फिर भी मै उसी तरफ से निकला। गॉव की हालत शायद आप लोग न जानते हो—शहर के रहनेवाले ठहरे। पर हम ज़िमीदार लोग जब कभी निकल पड़ते हैं, जिधर निगाह जाती है लोग

झुके हुए सलाम करते ही नज़र आते है—चारपाइयाँ ख़ाली हो जाती है। और अगर हमने किसी का नाम पुकार लिया तो वह कृतज्ञ होकर हाथ जोड़े सामने आ खड़ा होता है। किसी के दरवाज़े पर अगर हम रुक गये, कुछ हाल-चाल पूछ लिया तो वह बिना मोल का चाकर होने को तैयार हो जाता है। मै आज-कल की नहीं कहता—अब तो हवा ही बदल गयी है। उस दिन महाबीर के घर के सामने से निकलते हुए अनायास मैंने पुकारा, महबिरवा !' वह तो शायद खेत से लौटा न था। उसका लड़का ढोरो मे था। घर की टट्टी हटाकर किसी ने झाँका। मैंने देखा, मृगशावक सी दो आँखें मुझे देख रही थीं। मैंने पूछा—'अरे मालती, महावीर घर पर है ?' उसने सिर हिलाकर धीरे से कहा—'भइया जी, फूफा सीवान मे है।' मैंने कुछ न कहा, कुछ कह न सका, पर उसे एक बार देखकर मेरे होठो पर मुस्कराहट आये बिना न रही। मै कदम बढ़ाता हुआ आगे बढ़ गया। एक बार मुड़ कर दबी हुई निगाह से देखा तो वह चित्रवत् द्वार पर खड़ी थी। फिर तो वह नित्य का धन्धा हो गया। उसी महा-बीर के घर से होकर निकलना, लौटना। पहले सिर्फ देखकर कलेजा ठण्ढा कर लेता था, फिर उसकी मधुर बोली का आनन्द लेने लगा। मुझे अब विश्वास हो गया कि जिस व्याधि की उत्पत्ति मेरे मन मे हुई है उसी से मानो मालती भी पीड़ित है। अब वह भी किसी बहाने मेरी 'बखरी' मे आती और किसी न किसी बहाने मुझे देख जाती—मुस्करा जाती। हमारी आँखें मिलने लगी—जाने क्या समझने-बूझने लगी, पर उनकी इस सुलह से मेरा चित्त उदास रहने लगा। किसी काम मे जी न लगता था। बिना उसे देखे मुर्झाया सा पड़ा रहता था।

"मेरे पिता जी काफी वृद्ध हो रहे थे। चार शादियो मे मै ही उनकी एकमात्र संतान था। मेरी माँ कभी की मर चुकी थी।

घर में नौकर नौकरानियाँ बहुत थीं। पिता जी के सम्बन्ध से मैं किसी को 'चाची' किसी को 'काकी' कहकर पुकारता था। मुझे उदास देख ऐसा जान पड़ता है, मेरी किसी 'बहिन' वा 'चाची' ने पिता के सम्मुख चिन्ता प्रकट की थी, नही तो पिता जी से मेरा सामना कब होता था। वे अपने काम और आराम मे व्यस्त रहते थे और मै अपनी दुनिया मे मस्त रहता था। पर उस दिन उन्होने मुझे बुला भेजा। मै अदब से उनके सामने जा खड़ा हुआ। वे चौकी पर बैठे अपने हाथो को शौच के प्रायश्चित से एक सौ एक बार मृत्तिका-स्नान करा रहे थे। पास मे चिकनी मिट्टी का ढेर रखा था। सामने नौकर बड़ा लोटा लिए पानी ढाल रहा था। मै सिर झुकाये अदब से दाहिनी बग़ल खड़ा था। मुझे देखकर वे बोले—'भइया, आजकल क्या तबीयत ठीक नही रहती ?'

"मैंने एकाएक तनकर कहा—'नही तो, बप्पा ! अच्छा तो हूँ।' वे फिर अपनी उँगलियो को तत्परता से मिट्टी से मलने लगे। बीच बीच मे नौकर को कुछ हिदायत देते जाते थे। एक बार फिर शायद उन्हे मेरा ध्यान आ गया। हाथ धोते-धोते बोले—'देखो बेटा, अपनी तन्दुरुस्ती का ख्याल रखा करो। तुम्हे चिन्ता किस बात की, खाओ पीओ मस्त रहो। तुम्हारी उम्र के हम थे तो अपने कुरते-टोपी तक की खबर न रखते थे। तुम लोग इतनी ही उमर मे जाने क्या क्या विद्या पढ़ लेना चाहते हो। बार बार समझाता हूँ कि पढ़ने, लिखने से कुछ नहीं होता। 'तन्दुरुस्ती हज़ार नियामत हैं'—बडे बूढ़े क्या यो ही कह गये है।'

"अब वे दातुन करने जा रहे थे। इस क्रिया मे कम से कम बालिश्त भर की तीन चार नीम की टहनियाँ वे चबा डालते थे और इस क्रिया के सपादन मे दो घन्टे से कम नही लगते थे। मै कब तक खड़ा रहता। धीरे से दबे पाँव लौट कर अपनी बैठक मे जा पहुँचा। लेटकर जाने क्या सोचने लगा। मन मे शङ्का

उठती, क्या बप्पा के कानो मे कुछ भनक पड़ी है। फिर विश्वास हो गया, नही तो, वे गऊ आदमी हैं। इन सब बातो पर क्या ध्यान देगे। अपने पिता के इस महान चरित्र पर मुझे अपार श्रद्धा हो उठी। मैने मन ही मन उनके चरणो मे अपना सिर रख दिया और ईश्वर से गद्गद् हृदय से भिक्षा माँगी कि उन्हें चिरजीवी करें।

"अब मेरे दिन अच्छे कटने लगे। मेरी मटरगश्ती बढने लगी। शिकार के बहाने मै जगल मे नित्य जाने लगा। पढ़ना-लिखना पिता के उपदेश के अनुसार व्यर्थ समझने लगा। दोनो मास्टर अपनी 'ड्यूटी' का ख्याल कर सन्ध्या समय मेरी मुसाहबी कर लेना आवश्यक समझने लगे। हम सब प्रसन्न थे। मै हृदय से प्रसन्न था। जङ्गल मे प्राय: नित्य मालती से मुलाकात हो जाया करती थी। जङ्गल का निराले से निराला कोना भी हमारे चरणो से पवित्र हो चुका था। हमारे संकेत स्थान नित्य बदलते रहते। कभी हम नदी के तट पर जामुन के झुरमुठो मे अजगर की तरह फैली हुई जड़ो पर बैठकर गाते, कभी हम पानी पर लटकी हुई सिहोर की डालियो पर बैठकर झूलते, कभी हम करौंदे के पके फलों को तोड़ कर खाते हुए तीतरो के घोसले ढूँढ़ते, कभी हम गायो को 'खादर' मे चरने के लिए छोड़ खरगोश के बिलो की तलाश करते। दशा यह हो रही थी कि इन सब मे हम अपना खाना-पीना भूल जाते—कभी कभी अपने को भी।

"कुछ ही महीनो बाद मेरी शादी ठीक हो गयी। उसकी तैयारियाँ होने लगीं। हम ज़िमीदारो की शादी हमारे जीवन की विशेष घटना नही होती, यदि इसका कोई महत्त्व होता होगा तो वह माता-पिता का विशेष अधिकार है। हम इससे बच नहीं सकते, इसलिए हम इसकी विशेष चिंता नहीं करते। हमारी

शादी हो गई। हमारे घर मे पिता की पतोहू आ गई। अब वे जैसे अपने जीवन की अन्तिम अभिलाषा पूरी कर चुके थे। मैंने अक्सर उन्हे कहते सुना—'अब मुझे क्या करना है। भइया अपना घरबार सँभालने लगें और मै अयोध्या जी मे जाकर राम-नाम भजूँ। बहुत सुख किया, अब कुछ परलोक की भी फिक्र करनी चाहिए।' कहते-कहते एक दिन वे सचमुच चलने को तैयार हुए। मुझे बुलाकर बोले—'बेटा, अब ज़िन्दगी का ठिकाना नही। जब तक शरीर मे साँस है भगवान का स्मरण करूँगा। अब तुम समझदार हुए, अपना भला-बुरा सोच सकते हो।' मै क्या उत्तर देता। चुपचाप खडा सुन रहा था। वे कहने लगे—'मै अब अयोध्या जी मे जाकर रहना चाहता हूँ। तुम अपना कारबार देखो। जब तक मौजूद हूँ, जो पूछोगे बतला दूँगा।'

"पिता जी चले गये। उनके साथ मेरी चाची, काकी आदि भी चली गयी। पुराने नौकर भी चले गये। अब मै घर का मालिक था—सब कुछ था। नये-नये नौकर नौकरानियाँ भरती हुईं। इनमे मालती भी एक थी। मालती मेरी स्त्री की ख़ास सेवा मे रहती। इसी बहाने मै उसे देख लेता—दो बातें भी कर लेता था। मालती अब खुशहाल थी। उसके तन पर अच्छे कपड़े रहते, कानों मे कर्णफूल लटकते, हाथो और पैरो मे चाँदी के कड़े खनकते। वह खिली जा रही थी। उसे देखकर मेरा दिल आपे से बाहर हो जाया करता था। पर मै विवाहित था, इसलिए सुबह का भूला शाम तक घर पहुँच जाता था।

"होली के दिन थे। अपने 'राज' की पहली होली आई थी। हफ्तो से ख़ुशियाँ मनाई जा रही थीं। मनाने की तैयारियाँ हो रही थी। वैसी उमङ्ग, वैसी ख़ुशी, वैसा आनन्द फिर आज तक न देखने मे आया। सबेरे से रङ्ग मे भीग कर दोपहर को नहा-धो खा-पीकर बैठक के कोठे पर आराम कर रहा था। बाहर

धूप चमक रही थी। भीतर ठण्ढक अच्छी लग रही थी। मै अलसाया हुआ पलङ्ग पर लेटा था। दूर कुएँ पर नौकरो के नहाने और हो-हल्ला की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। ज़ीने पर किसी के छम-छम चढ़ने की आवाज़ सुनाई पड़ी। मै समझ गया, मालती पान लेकर आ रही है। कह नहीं सकता क्यो, पर मै सोने का वहाना करके विस्तर पर पड़ रहा। पैरो की आहट से मै समझ गया कि वह पास आकर खड़ी हो गयी है। मुझे ऐसा लगा, मानो वह ग़ौर से मुझे झुककर देख रही है। मेरे हृदय मे गुदगुदी होने लगी। मैने भरसक अपने को रोकने की कोशिश की, पर आख़िरकार मुझे मुस्कराहट आ ही गयी। उसने समझ लिया, मै सो नहीं रहा हूँ। वह पान का डिब्बा सिरहाने रखकर यह कहती हुई लौटने जा रही थी—'यह चरित्तर! मुझे क्या, वह पान रखा है।' मैने चट से उसका बायाँ हाथ पकड़ लिया और हँसता हुआ उठ बैठा। आँखें खुलते ही उसका ठाठ देख मै ठक रह गया। क्षण भर एकटक उसका मुखड़ा देखता रहा। उसका सौन्दर्य आज उन आभूषणो और बसन्ती साड़ी से फूटा पड़ता था। मैने चिढ़ाते हुए कहा, 'आज किसे ठगने निकली हो मालती!' उसने तिरछी निगाहों से मुझे तरेरकर देखा, मै पलङ्ग से उठ खड़ा हुआ। बोला, 'आओ, तुम्हारी तस्वीर खीच दूँ मालती!' और मैंने उसे पकड़कर खिड़की के पास तख़्त पर बैठा दिया। पश्चिम की ओर जाते हुए सूर्य की रोशनी ठीक उसके कुन्दन से मुखड़े पर पड़ रही थी। मैने चट केमरा निकाल उसके तीन-चार 'पोज़' ले लिये।

"वह चलने को हुई। मैने जाने क्यो जल्दी से केमरा अधमुड़ा पलङ्ग पर फेंक उसे रोक लिया। फिर क्या हुआ, इसे कहने की क्या जरूरत है। कई दिन तक हम दोनो एक दूसरे का सामना करने से सहमते से थे—एक दूसरे की तरफ़ देखने का साहस न

करते थे। वह मुझसे अकेले मे मिलने से भागती थी। और मै उसे देखकर कतरा जाता था।

"मालती के प्रति मेरे दिल के खिचाव का जैसे अन्त हो गया। अब वह मेरी नज़रो मे वह मालती न रही। साधारण नौकरानी मात्र थी, जिस पर ध्यान देना मेरे पद और सम्मान को शोभा नही देता था। पर यह मै अब भी निश्चयपूर्वक कह सकता हूॅ कि जब कभी भूले से हमारी दृष्टि एक दूसरे से टकरा जाती थी, उस समय उसकी बडी बड़ी ऑखो का वह भाव मेरी नजरो से न छिपा रहता था, जिसके कारण मेरे हृदय मे एक अजीब वेदना उठती थी, जो बढ़ते-बढ़ते मुझे अपने को धिक्कारने पर विवश करती थी। पर हम लोगो की शिक्षा-दीक्षा ऐसी है कि हम 'सेन्टीमेन्टल' नही हो सकते। मैने धीरे-धीरे अपनी इस कमज़ोरी को दबा दिया और प्रायश्चित-स्वरुप मैने मालती को कुछ धन देकर सन्तुष्ट कर देने का निश्चय किया।

"मालती को एक बार किसी न किसी बहाने मै देख ही लेता था। मैने देखा कि उसके चेहरे की दीप्ति क्षीण होने लगी थी। मेरी आशका निर्मूल न थी। कुछ दिनो बाद मुझे विश्वास हो गया कि मैने उसके साथ भारी अत्याचार किया था। एक दिन बाहर जाते हुए मै उसे आदेश दे गया कि पान पहुॅचा जा। मै बैठक के ऊपर वाले कमरे मे लेटकर उसकी प्रतीक्षा करने लगा। थोड़ी देर बाद वह डरती हुई हाथ मे पान का डिब्बा लेकर पहुॅची। मेरी ऑख बचाते हुए उसने पूछा, 'कहाॅ रख दूॅ।' बड़े साहस से मैने कहा, 'इधर ला!' और अपना हाथ बढ़ा दिया। उसने पनडब्बा वाला हाथ बढ़ा दिया और साथ ही साथ मेरी ऑखों से बचने के लिए उसने मुॅह फेर लिया। मैने पनडब्बा के साथ उसकी कलाई भी पकड ली और खीचते हुए बोला— 'मालती, मुझे पहचानती नही ?' उसने रुॅधे हुए कंठ से कहा—

'मुझे जाने दें।' मैंने कलाई न छोड़ी। बोला, 'यह तेरी क्या हालत है मालती! कैसी हो रही है।' उसने कठिनाई से इतना कहा—'क्या हालत है!' आपने मुझे कहीं का न रखा। क्या आप कुछ जानते नहीं?' मेरा जी सन्न सा हो गया। क्षण भर इस विचार ने मुझे कँपा दिया। बेचारी अब क्या करेगी! इस हिन्दू समाज में उसे कहाँ स्थान मिलेगा, इसे मैं जानता था। मैंने ढाढ़स बँधाते हुए कहा, 'तू अपने घर चली जा न।' वह बोली—'मेरे घर कौन है।' मैंने पूछा, 'तेरा आदमी कहाँ रहता है।' वह कुछ शर्मा सी गई, फिर बोली—'सुनती हूँ, वे कहीं काशी में नौकरी करते है। मैंने तो उन्हें शादी के बाद देखा ही नहीं।' मेरे मन में उसके प्रति सहानुभूति भर गयी। मैंने तरकीब सोच ली। उसे ढाढ़स दिलाते हुए मैंने कहा—'तू घबरा मत। मैं तुझ पर आँच न आने दूँगा।' वह कृतज्ञता से छलछलाई हुई आँखों से मुझे देखती हुई, उसे पोछती हुई चली गई। उसके चले जाने के पश्चात् मुझे इसका अनुभव हुआ कि उसके लिए मेरे दिल में सच्ची हमदर्दी उठी थी।

"महाबीर को बुलाकर मैंने मालती के पति का पता लगाया। उसके पास खत लिखवाये और उसे यहाँ आकर मालती को लिवा ले जाने के लिए खर्च भेजा। वह आया। मैंने उसकी बड़ी-बड़ी खातिरें की, विदा करते वक्त उसे कपड़े, लत्ते से खुश कर दिया। मालती जा रही थी, मेरे हृदय का जैसे बोझ उतर रहा था। पर दिल जैसे बैठा जा रहा था। भीतर ही भीतर जैसे ऐसा मालूम होने लगा था कि कोई भारी चीज़ खोने वाला हूँ। मैं अपनी इस कमज़ोरी पर खिजला उठता था। वह चली गयी। मैंने नौकरानी समझ उसके जाने की परवाह न की। पर उसके चले जाने पर मेरा जी जाने कैसा हो उठा। एकान्त में अपनी आँखों में उमड़े हुए आँसुओं को बहने देने से मैं रोक न सका। जी में आता

था कि जी भर रोकर अपने हृदय को एक बार हलका कर लूँ।

"मालती चली गई। फिर उसकी खबर न मिली। यह भी न मालूम हुआ कि उसके बच्चे का क्या हुआ। अपने बखेड़ों मे उसे एकदम भूल गया। इस बीच मेरे लडके लड़कियाँ हुई। पिता का देहान्त हो गया। पन्द्रह वर्ष बाद मेरी पत्नी भी चल बसी—मै कुछ का कुछ हो गया, जमाना कुछ का कुछ हो गया। लोगो ने बहुत विवश किया कि 'अभी आपकी उम्र ही क्या है, अभी आप चालीस के भी नही हुए।' पर मै दूसरी शादी करने पर राज़ी न हुआ। लड़कियो की शादी कर, लडके को तालुकदार स्कूल मे भेज मै फिर अच्छी तरह अपनी ज़िन्दगी बिताने लगा। पुराने ज़माने मे हम लोग जो कुछ करते थे, घर पर ही रह कर करते थे। पर अब हमे देहाती दुनिया मे मज़ा नही आता, इसलिए हम मौज करने शहरो मे निकल जाते है—कभी मुकदमे के सिलसिले मे, कभी अफसरो से मिलने के बहाने, कभी तीर्थ मे विश्राम करने के नाम पर। मै भी किसी न किसी बहाने जब जी ऊबता, किसी बडे शहर की शरण लेता। वहाँ हमारी दिनचर्या क्या होती है, शायद आप लोगो को इसका कुछ अनुमान न हो। हमारा दिन वहाँ खाने-पीने, खरीद-फरोख्त, खेल-तमाशे और भोग-विलास मे बीतता है। तीर्थ-स्थानो मे जाकर हम गङ्गा भी नहा लेते हैं। घण्टो जाप भी कर लेते है, ब्राह्मणो और मन्दिरो के पुजारियो को ख़ुश कर आशीर्वाद भी बटोर लेते हैं। पर यह सब जैसे अजीर्ण को रोकने के लिए पाचक सेवन की भाँति है। आप इसे व्यङ्ग न समझें, हम इस पर झेंपने वाले नही। हमे इसकी लज्जा नहीं। हमारा विश्वास है कि हम इस पृथ्वी पर सुख भोगने के लिए आये हैं। उस लोक मे भी सुख से बीते, इसलिए हम समय-समय पर धर्म का भी सञ्चय करना दूरदर्शिता समझते हैं।

"मेरी स्त्री को मरे पाँच साल हो गये थे। मै गाँव से ऊबकर काशी मे जी बहलाने पहुँचा था। दिवाली का त्योहार बीत चुका था। हलकी सरदी पड़ने लगी थी। रात के क़रीब नौ बजे मै वहाँ की उसी गली मे हवा खाने निकला था, जिसका नाम आजकल के शिक्षित लोग ज़बान पर लाने मे हिचकते है। पर मै काशी के उस गली का नाम लेना उतना बुरा नही समझता। आप समझ गये होगे, वहाँ वेश्याएँ रहती हैं। मै उसी दालमण्डी मे एक पानवाले की दूकान पर खड़ा पान खा रहा था। सामने लगे हलब्बी शीशे मे अपनी सूरत देखता हुआ मूछे ऐंठ रहा था। आईने मे अपनी सूरत देख मै मन ही मन अपने पर मुग्ध हो रहा था। सोचता था, क्या यह सूरत इस उम्र मे भी किसी का दिल लुभाने मे पीछे रह सकती है। देखते देखते मुझे उसी आईने मे किसी सुन्दरी का मुस्कराता हुआ चेहरा नज़र आया। मैने मुड़कर ऊपर देखा तो सामने खिड़की पर बैठी एक बाई जी मुस्करा रही थी। एक बार आँखे उठी तो फिर कुछ देर टिकी सी रह गयी। मस्तिष्क मे उथल-पुथल हो उठा। कुछ स्मरण न आता था कि उसे देख क्यो आँखे ललच उठी। कभी देखा हो, यह दूसरी बात है; पर याद नही आ रहा था कि कहाँ देखा है।

"पानवाले की कितनी गिलौरियाँ चबा गया और खड़ा-खड़ा मुस्कराता रहा। मेरे साथ मेरा विश्वासपात्र और स्वामिभक्त नौकर रामू भी था। वह इस समय भी मेरे साथ है। तीसरे डब्बे मे आप उसे देख सकते है। मैने रामू को इशारा किया। वह रास्ता ढूँढ़ कोठे पर जा पहुँचा। क्षण भर मैने पानवाले से बाई जी का परिचय पूछा। मालूम हुआ, इनका नाम जमुनाबाई है और इस समय नगर मे इनके सौन्दर्य और गले की धूम मची है। मैने चार पान मुँह मे दबा उसे रुपये फेंक दिये। रामू ने पीछे से धीरे से कहा, 'सरकार चलें।' और मै कोठे पर जा पहुँचा।

वह नीचे ज़ीने पर बैठा अपनी बीड़ी सुलगाने मे लग गया। ऊपर पहुँचते ही वाई जी ने मेरा स्वागत किया। पान हाज़िर किये। सजिन्दो की पुकार हुई। यह सब होता रहा पर मै एकटक उसका चेहरा देखता रहा। वह मुस्करा-मुस्करा कर मेरे ऊपर दृष्टिपात कर रही थी।

"मुजरा हुआ। उसने ख़ूब गाया। मैने भरपेट दाद दी और मुट्ठी भर-भर के इनाम दिये। उसने और उसके साजिन्दो ने झुक-झुक कर सलाम किये। करीव ग्यारह बजे मै घर लौट आया। सारे रास्ते मै कुछ सोचने की नाकामयाब कोशिश करता रहा, पर मुझे यह भी न पता चला कि क्या सोचना था। अब मेरे दिन अच्छे कटने लगे। सबेरे गङ्गा-स्नान करता, घाट पर बैठ कर जप करता, लौटकर विश्वनाथ-अन्नपूर्णा का दर्शन करता, डेरे पर पहुँच कर खाता-पीता सो जाता। सध्या समय गपशप कर रात को जमुना के यहाँ मुजरा सुनता, दिल बहलाता। कुछ दिन बीत चले। अब हम दोनो मे बेतकल्लुफी बढ़ने लगी। गाना-बजाना कम होने लगा। गपशप, हँसी-मज़ाक की मात्रा बढ़ी। अक्सर हम अकेले बैठकर घण्टो ताश खेलते, कभी-कभी बीच-बीच मे मै हारमोनियम बजाने लगता और उससे किसी गीत को गाने की फरमाइश करता।

"उस दिन कुछ सर्दी बढ़ गयी थी। अँधेरे पाख की रात हलकी बदली के कारण और भी अँधेरी हो रही थी। पर जब मै अँधेरी सड़को और गलियो को पारकर उस गली मे पहुँचा तो वहाँ काफी रौनक थी! दूकानों पर गैस की बत्तियाँ जगमगा रही थी। उस ज़माने मे काशी मे बिजली का प्रबन्ध नही हुआ था। मैने देखा, वाई जी कुछ मलीन सी, जैसे किसी की प्रतीक्षा में बैठी हैं। मुझे देखते ही उनका चेहरा खिल उठा। कमरे मे 'पेट्रोमैक्स' जल रहा था। उसकी दूध सी रोशनी में उसका चेहरा

कमल सा खिल रहा था। मैने मुस्कराते हुए आँखो मे आँखें डालते हुए कहा—'आज तुम बड़ी सुन्दर लग रही हो जमुना!' उसने शर्मा कर आँखें नीची कर ली, बोली—'कब से आसरा देख रही हूँ, यह तो न पूछा। रास्ता देखते-देखते आँखें पथराने लगी।' मुझे हँसी आ गयी इस उपक्रम पर। पर मेरा हृदय उसका उपहास करने पर राज़ी न होता था। मैने कहा—'अच्छा माफ करो बाई जी, बोलो कुछ सुनाती हो।'

"मैने फरमाइश की, वह हँस-हँसकर गाने लगी। उस दिन गाना ख़ूब जमा। साजिन्दो ने ख़ूब बजाया। बाई जी ने भी अपना जौहर दिखाया। मै तो आनन्द-विभोर हो रहा था। मुझे ऐसा जान पड़ने लगा मानो मै सङ्गीत की मधुर लहरियो पर बसता जा रहा हूँ।

"गली मे सन्नाटा छा गया। तमाशबीनो का झुण्ड भी चला गया था। अधिकतर खिड़कियो के दरवाज़े बन्द हो चुके थे। घडी पर नज़र पडी तो बारह बज रहे थे। मेरा इशारा पाते ही साज़िन्दे चलते बने। मै भी उठने की सोचने लगा था।' बाई जी, माफ कीजिगा!' कह कर पास के कमरे मे चली गयी। बाहर की ठंढी हवा परदो को उड़ाती हुई भीतर आ रही थी। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो पानी की छीटें भी आ रही थी। खिड़की बन्द करते हुए सामने कमरे की ओर मेरी नज़र चली गयी। दरवाज़े पर लगे जालीदार पर्दो के भीतर रोशनी जगमगा रही थी। ऐसा जान पड़ा मानो जमुनाबाइ किसी काम मे लग गयी है। मै उससे बिदा माँगने की नीयत से उस-कमरे मे जा पहुँचा। देखा, तो सामने लगे बड़े आइने के सम्मुख खड़ी वे अपने बाल ठीक कर रही है। मैने केवल पीठ पर लटके हुए उसके चमकीले काले लम्बे बालो को देखा। मै पास जा पहुँचा। आइने मे उसकी यौवनश्री देख मैं मुग्ध हो गया। मैने कहा—'जमुना

वाई, काफ़ी देर हो रही है अब चलता हूँ।' उसने मुस्कराते हुए पूछा—'सचमुच आप जाना चाहते हैं ? इस सर्दी की रात मे, इस बेवक्त आप जाकर क्या करेंगे।' और उसने मेरे चेहरे पर आँखें गड़ा दी। मेरा जी जाने कैसा हो रहा था। फिर भी मैंने अपन को रोका। मैंने कहा, 'जाऊँगा नही तो यहाँ क्या करूँगा।' उसने मेरा हाथ पकड़ पास सोफे पर बैठा दिया और अपनी साड़ी सँभालने लगी। एकाएक उसका कोमल हाथ खीच मैंने उसे बग़ल मे बैठा लिया और बोला, 'मुझे जाने क्यों नही देती'—वह चुपचाप मुस्करा रही थी। कोने मे अगरदान मे सुलगती हुई अगरबत्ती की सुगन्धि कमरे को बसा रही थी। उसके कोमल हाथ अपने हाथ मे दबाते हुए मैंने प्रश्न किया—'बोलती क्यो नही, जाऊँ या रहूँ ?'

"वह मुँह फेर कर चुप हो रही। मैं उन्मत्त हो उठा। सामने कुछ ऊपर दीवाल पर लगे सोनहले चौघटे वाले तैल-चित्र पर मेरी दृष्टि जा पहुँची। मुझे ऐसा जान पड़ा मानो सोनहले चौखटे के भीतर से जमुना धीरे-धीरे मुस्कराती हुई मुझे देख रही है। क्षण भर के लिए मैं एकाग्र हो उसे देखने लगा। चित्र है—यह स्मरण आते ही मैंने जमुना का मुख उधर फेरते हुए पूछा—'यह तुम्हारा चित्र किस चतुर चित्रकार का बनाया हुआ है ?'

चित्र की तरफ एकटक देखती हुई वह बोली—'यह मेरा चित्र नही है ठाकुर साहब !'—और वह हँस पडी।

'फिर किसका है—तुम्हारी बहिन का ?'—मैंने पूछा।

'नही, वह मेरी माँ का है !'—उसने कहा।

"मैंने अनुभव किया 'माँ' शब्द का उच्चारण करते समय उसकी वाणी कुछ लड़खड़ा सी उठी। मैंने पूछा, 'क्या तुम्हारी माँ अब जीवित नहीं है।' उसकी आँखें सजल हो उठीं। बोली, 'मेरी माँ मुझे धरती पर जन्म देने के पश्चात् ही स्वर्ग सिधारी

थी।' मै इस चित्र को रह-रहकर गौर से देखने लगा। ये आँखें जैसे कभी उसे देखने मे अभ्यस्त थी। मै स्मृति के भण्डार को टटोलता था पर कुछ ध्यान मे न आता था। मैने कुतूहल-वश फिर पूछा, 'तुम्हारी माँ की माँ ने तुम्हे पाला-पोसा होगा?' उसने अनाथ की भाँति पीड़ित मन से उत्तर दिया, 'ठाकुर साहब, मेरी माँ वह न थी, जो मै हूँ।' मेरा कुतूहल उत्तेजित हो उठा, मैने फिर पूछा—'तुम्हे यह कैसे मालूम हुआ! तुम तो कहती थी कि तुमने उसे देखा ही नही।'

"वह बोली—'जिस दाई ने मुझे पाला-पोसा था वह बतलाती थी कि उसकी गोद मे सौंप कर मेरी माँ ने बड़े कष्ट से प्राण त्याग किये थे।' एकाएक एक साधारण सा विचार बिजली की भाँति मेरे मन मे कौंध गया, फिर ज्यो-का-त्यो अँधेरा छा गया। मैने पूछा, 'क्या तुम्हारे यहाँ कोइ और न था, जो तुम्हे इस पेशे से बचाता?'

" 'कौन था! मेरे पिता मेरी माँ को इस हेतु त्याग चुके थे कि मेरी माँ का सम्बन्ध गाँव के एक ठाकुर से हो गया था।' मैने उत्तेजित होकर पूछा, 'तुम्हारी माँ कौन जाति की थी?' 'अहीरिन...' उसने उत्तर दिया। मै पूछता गया—'उसका घर कहाँ था?' वह बोली—'यहाँ से बहुत दूर किसी गाँव मे, मुझे स्मरण नही। भला सा नाम बतलाते थे।' मेरा हृदय काँप रहा था। आँखो के सामने अँधेरा छा रहा था। जिज्ञासा से प्रेरित होकर मैंने पूछा, 'तुम्हारी क्या उम्र होगी जमुना?' इस अप्रासंगिक क्षेपक से वह कुछ लज्जित-सी हो उठी। उसने अपने को पुनः सँभालते हुए मुस्करा कर कहा—'मेरी उम्र क्यो पूछते है आप? क्या मैं बूढ़ी जान पड़ती हूँ।' मैने कहा, 'नही, नहीं, कितने दिन हुए होंगे, तुम्हारी माँ को मरे हुए!' उसका गला जैसे फिर भर आया।

बोली, 'उसे मरे अब बीस वर्ष हो रहे है, और इतनी ही मेरी उम्र होगी ।'

"मैने एक बार फिर उस चित्र की ओर ग़ौर से देखा । मुझे ऐसा मालूम हुआ, मानो मालती मुझे देखकर व्यंग मे मुस्करा रही हो । मेरे हाथ-पाँव ढीले पड़ गये । मैने क्षण भर आँखें मूँद ली । मेरे बगल मे कौन बैठी है—इस विचार ने सर्प की भाँति मानो मुझे डस लिया । मै एकाएक खड़ा हो गया और यह कहता हुआ भाग निकला—'जमुना, बहुत देर हो रही है, अब नही ठहर सकता !' वह मुझे रोकने के लिए न उठ सकी । मै धड़धड़ता हुआ ज़ीने के नीचे उतर गया । द्वार पर सोते हुए रामू को फाँदकर मै गली मे जा पहुँचा । गिरता-पड़ता, भागता, जब मैं डेरे पर पहुँचा तो मेरे चौकीदार ने पूछा, 'सरकार अकेले आ रहे है । और रामू ?' मैंने कुछ उत्तर न दिया । सीधे कमरे मे पहुँच पलँग पर पड़कर हाथो से मुँह ढाँपकर रोने लगा—'परमेश्वर ! तूने मुझे साफ साफ बचा लिया !' "

और यह कहकर वे प्रौढ़ ठाकुर साहब अपना मुँह ढाँपकर बच्चो की भाँति सिसकने लगे । हम दोनो झेंपे से इधर-उधर देखने लगे । खैरियत यही थी कि उस समय उस रेल के डिब्बे मे केवल हमी तीन यात्री बच रहे थे ।

मेल ट्रेन अपनी पूरी रफ्तार से शोर मचाती हुई भागी जा रही थी, पर हमारे कमरे मे सन्नाटा छा रहा था और हम दोनो मूर्ति की भाँति निश्चल बैठे थे । मैंने यादव की तरफ देखा । वह अब बहस के लिए तैयार न था ।

राधा

उसका नाम राधा था। स्वकीया और परकीया वाले झगड़े की राधा वह राधा न थी, और न थी वह वृषभानु की लाड़ली, बरसाने की रहनेवाली, यमुना तट के करील-कुंजों मे विहरनेवाली राधा; पर उसका नाम राधा था। वह भी अहीर की लड़की थी।

राधा रहती थी काशी की एक अँधेरी गली में; गली के छोर पर; एक टूटे-फूटे मकान मे, जिसके सामने नालियों मे सदा गन्दा पानी भरा रहता था, कूड़े का पहाड़ सदा हिमाचल-सा अचल दीखता था। उसकी गली में म्युनिसिपैल्टी के हेल्थ आफिसर की मोटर गाड़ी न पहुँच पाती थी। अगर पहुँचता था तो केवल टैक्स का चपरासी टैक्स का नोटिस लेकर— सो भी साल मे केवल दो बार; बस दो बार!

राधा का व्याह बचपन में हुआ था। उसकी स्मृति राधा को नहीं थी। उसकी माँ मर चुकी थी। केवल बूढ़ा बाप बचा था, जिसकी कमर विपद् से झुकी थी, वयस से नहीं। वह दिन भर घर से बाहर रहता—मण्डी में पल्लेदारी करता। राधा घर पर अकेली रहती। उसकी न कोई सखी थी, न सहेली। वह घर पर अकेली रहती, घर का काम-काज करती, अपनी गौ की सेवा करती, उसे प्यार करती और प्यार करते-करते उसकी पीठ पर सिर रखकर झपकियाँ लेती। गौ उसका शरीर चाटती अपनी

बुरखुरी ज़ुबान से—वात्सल्य-रस से प्रेरित होकर। यह नित्य का धन्धा था।

राधा का कुटुम्ब अच्छे दिन देख चुका था। कभी उसका पिता अपनी जाति का 'चौधरी' था। उसके पास गायें थीं, भैसें थीं, निज का अच्छा मकान था, मान था, धाक थी। पर एक-एक कर सब कालकवलित हुए। कैसे? जैसे ससार की समस्त अस्थायी सम्पत्ति होती रहती है। अब उसके पास क्या था? वही जीर्ण-शीर्ण झोपड़ी, वही अष्टवर्षीया मातृहीना राधा, वह श्यामा गौ, अच्छे दिनो की एक दुखद कहानी और उन सब की वह कटु स्मृति—इन्ही को लेकर राधा का वह विपद् का मारा बाप अपना बुढ़ापा बिता रहा था। बूढ़े की लकड़ी थी तो वह राधा; निराशा मे आशा थी तो वह श्यामा गौ। राधा घर की देखभाल करती और पिता को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती। गौ गर्भिणी थी। उससे बूढ़े की आय मे वृद्धि होने की आशा थी।

राधा अभी आठ वर्ष की ही थी पर स्वावलंब ने उसे प्रौढ़ा की भाँति आचरण करना सिखा दिया था। उसमे लड़कपन की झलक न आने पाई थी और आये भी कैसे—उसने लड़कपन देखा ही कहाँ था! वह जन्मी तब उसका पिता भिखारी हो चुका था; वह पैरो खड़ी होने लगी तब उसकी माँ उस पर घर का भार छोड़कर स्वर्ग सिधार गई। उसने अपने को सँभाला, अपने पिता को सँभाला। वह 'गिहथिन' हो गई थी—अपनी गृहस्थी मे निपुण—अपने काम-काज में दक्ष। उसका संसार बहुत छोटा था, पर उस छोटी राधा के लिए वह काफी बड़ा था। राधा पिता से पहले उठती, अपनी झोपड़ी साफ करती, बासन माँजती, भोजन बनाती, गौ की सानी-पानी करती, पीसती-कूटती, उठाती-धरती। सबसे छुट्टी मिलती तब थकी-

माँदी राधा अपनी गौ को प्यार करने लगती। श्यामा उसकी संगिनी थी। बचपन से दोनो हिली थी। राधा उसकी पीठ पर प्रेम से हाथ फेरती, वह जुगाली छोड़कर उसका हाथ चाटती। वह उसे प्रेम से पुचकारती, वह अपनी मूक पर भावमय आँखो से उसका उत्तर देती। दोनो के प्रेम का आधार क्या था, यह प्रेम के पारखी ही बता सकते हैं।

गौ ने बच्चा जना। पिता-पुत्री फूले न समाये। राधा में वात्सल्य-रस उमड़ आया। मानो उसी को बच्चा हुआ था। उसका पिता प्रसन्न था, मानो डूबते नाव को सहारा मिल गया था। उसकी आमदनी ही क्या थी? मजूरी की अनिश्चित आय। अब वह सोचने लगा, "दूध होगा, राधा इसे बेच लेगी, महीने मे कुछ बँधी रकम मिलेगी, जो बचे-खुचेगा, हम दोनो के काम आयेगा।" बूढ़े ने अच्छा खाया था, अच्छा पहना था। उसकी स्मृति ने उसकी लालसा लुप्त न होने दी थी। दोनो गौ को पहले भी प्यार करते थे, सेवा करते थे, अब और करने लगे। अब उनके घर दूध होने लगा। बूढ़े ने गली के उस छोर पर रहने वाले ठाकुर के घर 'बँधी' कर दिया। जब बूढ़ा बासी रोटियाँ खाकर काम पर चला जाता, राधा अपना लोटा माँज, उसमे दूध भर, सिर पर रख, घर मे साँकल चढ़ा, ठाकुर के यहाँ दूध देने जाती। जाते समय गौ उसे ग़ौर से देखती, मानो पूछती हो, "यह दूध तुम स्वय न पीकर कहाँ ले जा रही हो?" राधा उसे सुहलाकर पुचकारकर चल देती, मानो उसे सांत्वना दे गई हो, कि "अभी, अभी आती हूँ श्यामा!"

ठाकुर की अट्टालिका गली के दूसरे छोर पर थी। वह पत्थर की बनी हुई भव्य और सुसज्जित थी। उसकी ड्योढ़ी पर दरवान बैठा करते थे। राधा अपने सिर पर दूध का लोटा रक्खे सीधे भीतर जाती—अन्तर:पुर मे बहू जी के पास। बहू जी प्रौढ़ा,

पर अकेली थीं; उनके कोई बाल-बच्चा न था। नित्य राधा दूध देने जाती, बैठकर नित्य दूध का उलहना सुनती, उसके शुद्ध होने की सफाई देती और मुस्कराती हुई चली आती। घर आकर वह अपनी गाय को पुचकारती, बछड़े को दुलारती और मन ही मन दोनों की खैर मनाती—ईश्वर को धन्यवाद देती।

राधा पक्की अहीरिन बन गई। उसकी गौ बड़ी दुधार समझी जाने लगी। वह एक जून तीन सेर देती, पर राधा अपने कौशल से कोठी में चार सेर पहुँचाती—उस पर कुछ पिता के लिए रख लेती, कुछ अपने लिए, कुछ बर्तन में लौटाल लाती। उसका पिता अब प्रसन्न रहने लगा, वह मेहनत में मन लगाता—कुछ पैदा करने का प्रयत्न करता। राधा धीरे-धीरे अपनी टूटी गृहस्थी जमाने की बातें सोचती। कभी पिता से कहती, "पैसे एकट्ठे हो तो और खरीदूँ।" पिता सोचता, "अपनी टूटी झोपड़ी की मरम्मत करा लूँ, साफ-सुथरा मकान बनवा लूँ, राधा का धूमधाम से गौना दे दूँ।" पर अभी सब मन की ही दौड़ थी, जिस पर चढ़ना था वह अभी सामने न आया था।

राधा नित्य दूध लेकर जाती, देकर चली आती। एक दिन वह दूध लेकर पहुँची। देखा, घर में चहल-पहल है—कुछ नये नौकर दीख पड़ते हैं। उसे आश्चर्य हुआ। यह अनहोनी सी-घटना थी। ठाकुर अकेले थे। ठकुराइन के कोई बाल-बच्चा न था। उनके नौकर-चाकर तो राधा ने देखे थे। राधा ने सोचा, "आज कोई उत्सव है।" वह दूध लेकर बैठ गई। कोई दूध लेने वाला न दीखता था। बहू जी न जाने कहाँ थी—आज उसे डाँटनेवाला न दीखता था। राधा चुपचाप बैठी थी। उसने पुकारा धीमे और मीठे स्वर में, "बहू जी!" कोई उत्तर न मिला। उसने दोहराया "बहू जी . . . ।" किसी ने डाँटकर कहा, "ठहर, आती हैं—ऊपर है।" वह चुप हो गई। उसे घर लौटने की देर

हो रही थी। उसने क्षण भर बाद इधर-उधर देखकर फिर पुकारा, "बहू जी......दूध ले लिया जाय।" ऊपर से आवाज़ आई, "ठहर आती हूँ। जान मत खा, काम मे हूँ।"

राधा ने सुना, यह बहू जी की आवाज़ थी। बहू जी गोद मे बच्चा लिये पहुँची; लड़का दो बरस का था—भोला-भाला, गोल-मटोल, सुन्दर, साँवला, चंचल-चपल। राधा ने देखा। एकटक देखने लगी। बहू जी ने टोककर कहा, "देख, नज़र न लगा देना मेरे मोहन को।" राधा हँसने लगी। लगी पूछने, "बहू जी, नज़र कैसे लगती है?" बहू जी हँसने लगी। राधा ने ललचाई हुई आँखो से मोहन की ओर देखा। उसकी गोद से जाने को वह गोद से उतरने लगा। राधा ने हाथ बढ़ाया। वह लपककर उसकी गोद में जा पहुँचा। राधा मोहन को खेलाने लगी। वह हँसता था, वह हँसती थी, मानो जन्म के परिचित हो। राधा किस लिए आई थी यह उसे याद न रहा। बहू जी अपने कामकाज मे लग गईं, तब राधा को मानो मोहन को खेलाने को अच्छा अवसर मिल गया। बहू जी ने डाँटा, "अरी, दूध देगी या नहीं, वहाँ कड़ाही जल रही है। इसे कहाँ तक खेलावेगी, यह बड़ा पाजी है।" राधा दूध नापने लगी। बहू जी ने मोहन को उठा लिया।

राधा जाने लगी। मोहन उसके पास जाने को मचलने लगा। वह लौट पड़ी, "बहू जी, यह किसका बच्चा है? मुझे बड़ा अच्छा लगता है।" उसने विनय से, लज्जा से, डरते-डरते पूछा। बहू जी ने मोहन को उछालते हुए कहा, "यह मेरी नन्द का बेटा है। मोहन—पाजी है, बदमास है—रोना है।" राधा ने सुन लिया। वह लौट पड़ी, भागी-भागी घर पहुँची। पहुँचकर बैठ गई। बैठकर सोचने लगी। सोचने लगी उसी मोहन की बात, कैसा सुन्दर मुखड़ा है, कैसी घुँघराली अलकें

हैं, कैसी काली चंचल आँखें हैं, कैसा साँवला शरीर है, देखते ही बनता है, कैसा हँस-मुख है, कैसा प्यारा है मोहन, देखते ही गोद मे आ गया, कैसा हँसता था खिलखिलाकर, कैसी चमकती थी, चावल की खुदी-सी दँतुलियाँ।"

राधा बैठी सोच रही थी—मोहन की बातें। उसकी शून्य-दृष्टि श्यामा पर पड़ती थी। गौ को उसने आज लौटकर प्यार नहीं किया, उसे चूमा नहीं, पुचकारा नही। चिर अभ्यस्त पशु के लिए यह अनोखा अनुभव था। वह तृषित आँखो से उसकी ओर देखती थी। सिर हिलाकर मानो उसे अपने पास बुला रही थी। राधा ने देखा, मानो उसने समझा भी। वह अपनी गौ के पास पहुँची। उसकी पीठ पर सिर रखकर खड़ी हो गई। सोचने लगी। जाने क्या सोचने लगी। गौ प्यार से उसका शरीर चाटने लगी। राधा को होश आया, जब दोपहर का गोला गरज गया था। उसे ध्यान आया—उसका सारा काम पड़ा है। वह जल्दी से अपने काम-काज मे लग गई, मानो उसने व्यर्थ कहीं खेल-कूद मे समय बिता दिया था।

मोहन राधा से ख़ूब परच गया। वह दूध लेकर पहुँचती तो वह उसकी प्रतीक्षा मे मिलता। देखते ही पूछता—अपनी तुतली वाणी में—"लाधा तू आ गई।" राधा दूध नापती हुई कहती, "हाँ मोहन, मैं आ गई।" वह उसकी गोद मे आ जाता। वह उससे बातें करने लगती। मोहन उसे अपने खिलौने दिखाता। वह प्रशसा करती। उनमे से दो-एक उठा ले जाने की धमकी देती। मोहन उससे छीनने का प्रयत्न करता। वह छिपा देती। वह उसे पीटने लगता। वह हँसती। वह रोता। वह खिलौने 'छू मंतर' कहकर निकाल देती। वह पाकर प्रसन्न हो उठता—खिलखिला कर हँस पड़ता। उसके नन्हे-नन्हे दूध के दाँत चमक उठते। राधा उसे पकड़ कर उसका मुख चूम लेती। वह

अपने को छुड़ाकर अपने खिलौनों से खेलने लगता। ऐसा नित्य होता था। जब राधा ठाकुर के घर दूध लेकर पहुँचता उसका लौटने का जी नहीं होता था। पर वह लौटती थी—लौटना ही पड़ता था।

मोहन धीरे-धीरे बड़ा होने लगा। वह घर मे अकेले घूमने लगा। सम्पन्न का पुत्र—अमीर का भानजा वह मोहन अब कभी-कभी अकेले खेलते हुए भी दिखाई पड़ता। कभी द्वार पर, कभी ड्योढ़ी मे, कभी नीचे आँगन मे। अब नौकर उसकी उतनी निगरानी भी न करते, पर वह गली मे उतरने नही पाता था। मामा की आज्ञा थी—माता दण्ड देगी। पर मामी उसे कुछ न कहेगी, यह मोहन जानता था। मोहन इस परिणाम पर एक दिन मे नहीं पहुँचा। मामा के घर आकर, इतने दिनो रहकर अपने अल्प जीवन की इनी-गिनी घटनाओ की नित्य-प्रति विलीन होती हुई स्मृति का सहारा लेकर, अपनी तीव्र होती हुई तर्कना से तर्क करके मोहन इस परिणाम पर पहुँचा था कि मामी उसे प्यार करती है और वह उसे किसी काम से रोकेगी नही—कम से कम दण्ड न देगी। उसकी इच्छा के विरुद्ध हठ न करेगी। उसे अपनी माता पर विश्वास न था, पर उसे अपनी मामी पर विश्वास था। वह उससे हठ करता, हठ करके उससे अपने इच्छानुसार काम करा लेता—उसके पास वह अपराध करके भी हँसता हुआ—आलिंगन, चुम्बन और प्यार के लिए विजयी की भाँति जाता था। उसकी आशा पर कभी कुठाराघात न हुआ। उसके अनुमान मे कभी भूल नहीं प्रमाणित हुई। इसी से मोहन जानता था कि वह यदि मामी से हठ करेगा तो वह उसे राधा के घर जाने देगी; अवश्य जाने देगी।

राधा दूध लेकर पहुँची। मोहन आँगन मे छड़ी का घोड़ा बनाये, उस पर चढ़ा सवारी की भाँति चक्कर लगा रहा था।

राधा ने आँगन मे पैर रखते ही कहा, "वाह मोहन, ख़ूब चढ़ते हो घोड़े पर !" मोहन रुक गया। उसका घोडा रुक गया। उसने अभिमान से राधा की ओर देखा, जैसे कोई खिलाड़ी अपने करतब की प्रशंसा होने पर देखता है। बोला—"लाधा, इसी पर चलकल मै तुम्हाले घल तलूँगा।" राधा चुपचाप सीढ़ी पर चढ़ने लगी। उसने कुछ उत्तर न दिया। मोहन का यह नित्य का प्रस्ताव था। बच्चो का प्रस्ताव ही क्या! राधा इसका क्या उत्तर देती ? पर वह उदास क्यो हो गई ? सम्भव है उसे प्रस्ताव ही प्रस्ताव समझ कर। वह दूध देने ऊपर चली गई। मोहन एकाएक उसकी ओर देख रहा था। उसे आज राधा की चुप्पी से आश्चर्य हुआ था। उसके बाल-हृदय को धक्का पहुँचा था। वह सोचने लगा, "राधा नाराज़ हो गई है—मै उसके घर नही जाता—वह मेरे घर रोज़ आती है।" बालक ने—हठी मोहन ने—क्षण भर मे सकल्प कर लिया, "आज राधा के घर जाऊँगा—ज़रूर जाऊँगा और इसी घोड़े पर चढ़कर! इसी तरह उचकता हुआ। लोग देखेंगे—कहेंगे—'वाह मोहन! ख़ूब चढते हो घोड़े पर ?'" इस विचार से मोहन प्रसन्न हो उठा। उसका सकल्प भीष्म का संकल्प हो गया। वह छड़ी छोड़ सीढ़ी से चढ़ता हुआ मामी के पास पहुँचा—सीधे मामी के पास। पहुँचते ही, दृढ़ता से, विनती से, हठ से, आग्रह से बोला, "मै लाधा के घल दाऊँगा," और विद्रोही आँखो से, नीची आँखो से, रोहाँसी से, डबडबाई आँखो से, उसने अपनी मामी को देखा। मामी को अब कहाँ मौका था आगा-पीछा सोचने का। वह प्यार से आगे बढी, उसे छाती से लगा लिया। हँसती हुई बोली, "जाना बेटा! राधा के घर। इसके लिए झगड़ने आया है तू मामी से।" बालक का कोमल हृदय प्यार-भरे उपालम्भ का भारी आघात न सह सका। वह मामी की गोद मे सिर छिपाकर सिसकने लगा। क्यो ? यह

वही मोहन जाने !

राधा अपने दूध का लोटा सामने रक्खे हुए बैठी थी; विचारों में मग्न—जाने किन विचारो में मग्न। पर वह विचारो मे डूबी हुई थी, उसकी अचल मुद्रा यह प्रकट कर रही थी। ठकुराइन पहुँची—मोहन को गोद मे लिये। राधा ने मानो ध्यान ही न दिया। सोचती थी, "पहले दूध का उलहना देंगी। दूध वही है, उलहना वही होगा।" मामी का उलहना राधा के लिए अभ्यर्थना थी। नित्य के राम-रास पर कौन ध्यान देता है ! राधा दूध नापने बैठी। मामी ने मोहन को गोद से उतार दिया। वह राधा के पास अभियुक्त-सा खड़ा हो गया—एक हाथ राधा के कधे पर रख, दूसरा हाथ अपनी ठुडढ़ी पर रख, आँखें नीची कर, मचलने की मुद्रा से। मामी ने हँसते हुए कहा, 'राधा ! तू बडी मायाविनी है—क्या सिखला दिया तूने मोहन को ? वह तेरे घर जाने को हठ कर रहा है।"

राधा ने सुना मामी का उलहना। पर इस उलहने से वह विचलित हो उठी। क्यो ? उसकी आँख सजल हो गई। उसका हृदय धड़कने लगा। पर वह अहीरिन थी। दूध में पानी मिलाकर वह नित्य निडर होकर उसे बेचने आती थी। वह सँभल गई। हँसने लगी। और बोली वह राधा—भोलेपन से और मोहन से, "क्यो जी मोहन ! तुम हठ करते हो, मामी मुझे मायाविनी कहती हैं।" मोहन ने उत्तर न दिया केवल कुछ खिसककर उसके और समीप खड़ा हो गया। अब उसका एक हाथ राधा के गले से लिपटा था। राधा हँसती हुई दूध नापने लगी। मोहन दोनो हाथो से उसका गला पकड़ उसकी पीठ पर सवार हो, उसे हिलाने लगा। और लगा मचलकर, हँसकर, बार-बार कहने, "हाँ तलेंगे ! जलूल तलेंगे"। राधा ने काँपते हुए हाथों से दूध का एक पाव, दो पाव, नाप,

दिया। हाथ हिल रहा था; दूध छलक रहा था। उसने सारा का सारा दूध बर्तन मे उँडेल दिया। मामी से उसने कहा, "बहू जी, पूरे चार सेर हैं। कुछ ज्यादा होगा। नाप लीजिएगा।" मामी ने आज नापने का आग्रह नही किया। राधा मोहन को लेकर घर चली।

मोहन अपने छड़ी के घोड़े पर था। राधा उसके आगे-आगे जा रही थी। मोहन का नौकर उसके पीछे-पीछे आ रहा था। मोहन उमग मे था। उसका काठ का घोड़ा भी तेज़ था। वह आगे निकल जाता। राधा पीछे पड़ जाती। मोहन रुक जाता और पूछता, "कहाँ है तुम्हाला घल लाधा?" राधा कहती, "वह सीधे, गली की छोर पर।" मोहन उतावली करता, कहता—"लाधा, तुम तो दौल नही छकती। आओ मेले घोड़े पल चल्ह लो।" राधा हँसने लगती, कहती—"आओ मेरे साथ साथ चलो न।" मोहन ने राधा की उँगली पकड़ ली, दोनो साथ-साथ चले—राधा अपने पैरो पर, मोहन अपने काठ के घोड़े पर। दोनो घर पहुँचे। राधा ने लपवकर साँकल खोली। मोहन घर मे धँस पडा। श्यामा रास्ते मे बँधी थी। उसने मुँह बढाकर स्वागत किया राधा का, पर एक अपरिचित को देखकर कुछ चौकी, कुछ सिर हिलाया। मोहन डर कर पीछे हट गया। राधा ने झट उसे गोद मे उठा लिया, बोली, "यह मारती नही मोहन! यह मेरी गौ श्यामा है।" वह गाय के समीप पहुँच कर उसे सुहलाने लगी। गौ उसका हाथ चाटने लगी। मोहन ने डरते-डरते गाय को छूआ, वह कुछ न बोली। उसने उसकी पीठ पर हाथ फेरा; वह प्रसन्न होकर उसे देखने लगी। मोहन ने धीरे-धीरे उसका सिर सुहलाया, उसके सींग छुए; गाय ने मुँह बढा दिया, मानो उसे अच्छा लगता हो। मोहन गोद से उतर पड़ा और गाय को प्यार करने लगा। राधा

चिन्ता में पड़ गई। "मेरी मालकिन का लड़का घर आया है; उसकी क्या खातिर करूं ?" उसके घर मे क्या था ? थोड़ा-सा दूध और जौ की रोटी ! उसने मोहन से पूछा, "दूध पीओगे।" मोहन गाय के बच्चे को गले लगाने की चेष्टा कर रहा था। वह रह-रहकर उछलता, कूदता। मोहन उसे बार-बार पकड़ने की चेष्टा करता।

राधा ने कटोरे में दूध रखकर मोहन को पुकारा, "मोहन ! लो थोड़ा दूध पी लो।" मोहन ने बछड़े को छोड़ कटोरे से मुँह लगा दिया। थोड़ा सा दूध पीकर बोला, "लाधा ! बला मीथा है तुम्हाला दूध।" "और घर का दूध मीठा नही होता मोहन ?" राधा ने विनोद से पूछा। 'नही लाधा।" मोहन ने मुँह बिचका दिया। राधा पूछकर पछताने लगी। सहस्र बिच्छुओ ने मानो एक साथ उसे डक मार दिया हो। अपराधी की भाँति वह अपना अपराध सोचने लगी। मोहन फिर बछड़े से खेलने लगा। राधा ने निश्चय कर लिया कि अब वह दूध मे पानी न मिलावेगी। पर अपने निश्चय पर वह क्षण भर से अधिक न ठहर सकी। चतुर अहीर की छोकरी ने तुरन्त उपाय सोच लिया। उसने मोहन को सम्बोधन कर कहा, "मोहन, मीठा दूध पीना हो तो रोज़ मेरे घर आया करो।" मोहन ने प्रस्ताव स्वीकार करते हुए बाल-सुलभ दृढ़ता से कहा, "हॉ, लोज आऊँगा लाधा, मुझे मीथा दूध अत्था लगता है।" दोनो कुछ देर विनोद कर रहे थे। मोहन को राधा ने अपनी टूटी झोपड़ी का कोना-कोना दिखलाया। मोहन ने एक-एक चीज़ के विषय मे पूछा, "यह क्या है, इससे क्या होता है, ऐसा क्यो नही है, क्या यह खाने की चीज़ है, खेलने की चीज़ है ?" राधा प्रत्येक बात का उत्तर देती, भरसक मोहन को समझाने का प्रयत्न करती। अन्त मे राधा ने मुस्कराते हुए और मन मे लजाते हुए, परिहास मे पूछा, "मोहन

हमारा घर अच्छा है ?" मोहन ताली बजाकर, अनुमोदन की ध्वनि मे कहा, "हॉ लाधा, तुम्हाला घल बडा अच्छा है।" और वह सिर हिलाने लगा, ऑखें मटकाने लगा। राधा ने बालक की चेष्टा का अनुकरण करते हुए कहा, "झूठ, मोहन ! तुम्हारा घर पक्का है, सुन्दर है। मेरा घर उतना अच्छा कहॉ !" मोहन अपना प्रतिवाद न सह सका। उसने राधा के मुँह पर अपनी छोटी हथेली रखते हुए कहा, "नही, नहीं ! तुम्हाला घल अत्था है। तुम्हारे यहॉ गाय है। गाय का बच्चा है। तुम्हाले यहॉ मीथा दूध होता है। नही, नहीं, तुम्हाला घल अत्था है ! हमाला घल कहाँ अत्था है ?" यह कहने के बाद उसकी मुख-मुद्रा मलीन हो गई। मोहन मानो सोच मे पड़ गया था। राधा ने उस गोद मे उठाते हुए कहा—"हमारा घर अच्छा है मोहन ! तुम ठीक कहते हो" और कुछ सोचती हुई वह गाय की गर्दन पर हाथ फेरने लगी। मोहन अपनी बातें भूलकर उसका अनुकरण करने लगा।

मोहन अब राधा के घर नित्य आता—खुलकर, छिपकर; मामी से लड़कर, झगड़कर, मचलकर वह आने की आज्ञा ले लेता। राधा भी जब उसके यहाँ दूध पहुँचाने जाती तब वह मोहन को इशारे से, बहकाकर, फुसलाकर, प्रलोभन देकर अपने यहाँ ले आने की चेष्टा करती। मोहन जिस दिन उसके घर न आता, राधा को कुछ अच्छा न लगता। उससे घर में काम ही न होता। वह रह-रहकर उसके आने की प्रतीक्षा करती, दौड़कर द्वार पर जाती, पहुँचकर गली से मोहन के मकान की ओर देखती और निराश हो अपना काम सँभालने लगती। पर उसका काम पूरा ही न होता। सध्या को उसका पिता आता तो देखता कि, कही बर्तन जूठे पड़े हैं, कहीं गोबर उठाया नहीं गया है, कही कुछ बाकी है, कहीं कुछ बाकी। वह पूछता, "बेटी, आज धन्धा क्यो पड़ा

है ? क्या तेरी तबीयत अच्छी नही है ?" राधा चुप रह जाती, वह सोचती, उसकी तबीयत तो ठीक है। परन्तु फिर वह सोचती, यदि ठीक होती तो काम मे जी क्यो न लगता। वह पिता के प्रश्न का कुछ निश्चित उत्तर न पाकर केवल 'हूँ' कर देनी और जल्दी से अपना धन्धा पूरा करने लगती। पिता थका-माँदा आता, खा-पीकर सो जाता। राधा उदास मन होकर मोहन का चिन्तन करती।

मोहन की बालसुलभ चपलता, वाचालता और कौतुक-प्रेम ने राधा के सोते हुए लड़कपन को जगा दिया था। अब उसे बच्चों-सा खेलना, दौड़ना, मचलना, मार-मीट, रोना, गाना अच्छा लगने लगा। पर किसके साथ यह सब करे ? जब मोहन नही आता तब वह क्या करती? वह उदास हो जाती। यह स्वाभाविक था। मोहन पहुँचता तब वह खिल जाती। मोहन अब धीरे-धीरे आठ बरस का हो रहा था। वह हृष्ट पुष्ट, चपल और सुन्दर बालक था। साँवला और सुडौल था। उसके केश काले और घुँघराले थे। वह बहुत ढीठ हो गया था। वह उसके घर आता तो बड़ा ऊधम मचाता। उसकी हर चीज़ उलट-पुलट कर देता। उसे चिढ़ाता, परेशान करता, कभी कभी मार भी बैठता। राधा कभी चिढ़ जाती, झुँझला उठती, मार बैठती, पर पीछे पछताने लगती। उसे मनाती—प्रेम से मनाती, हठ करके मनाती। मोहन मान जाता, हँसने लगता। फिर दोनो मिलकर घर की वस्तुएँ ठिकाने रखते। गाय की सानी-पानी करते। राधा मना करती, पर मोहन न मानता। हर काम मे वह उसके पीछे पीछे लगा रहता। राधा गाय दुहने लगती, मोहन बछड़े को पकड़ कर उसके समीप खड़ा होता और गाय को सुहलाता। वह दूध दुहती। दूध की धार दुहेड़ी मे पड़कर 'घर' 'घो' का स्वर अलापती। मोहन उसे सुनता हुआ तन्मय होकर जाने क्या सोचने

लगता। राधा कहती, "मोहन बछड़े को छोड़ दो।" मोहन चौंक कर पूछता, "क्या कहती हो राधा ?" उसका मुख देखता हुआ पूछता, "तुम क्यों हँसती हो जी ?" राधा पूछती, "तुम क्या सोच रहे थे मोहन ?" मोहन कुछ उत्तर न देकर झेंप जाता। फिर मचल कर कहता, "मुझे भी दुहना सिखलाओ राधा। मैं भी दुहूँगा।" राधा कहती, "तुम यह सब सीखकर क्या करोगे मोहन ?" मोहन हठ करने लगता। राधा उसे दुहना सिखलाती। मोहन बड़े उत्साह से दुहना सीखता। एक दो धार दुहता, राधा से पूछता, "ठीक है ? ऐसे दुहा जाता है ?" उसकी धार दुहेड़ी मे न गिरकर भूमि पर गिरती। राधा हँसने लगती, कहती "दुहेड़ी की ओर देखो मोहन। दुहते समय मुझे मत देखो।" मोहन चैतन्य हो जाता। वह नीचे सिर कर दुहने लगता। उसकी चुटकियाँ थक जाती थी, पर वह लज्जावश कुछ न कहता था। उसके हाथ धीरे धीरे चलते। राधा समझ जाती। हठकर दुहेड़ी दुहने बैठ जाती। मोहन बछड़े को सम्हालने लगता। प्रसन्नता से, बालसुलभ आनन्द से, वह हँसकर कहता, "अब मुझे दुहना आ गया राधा ! अब मै भी मामी से कहकर गाय खरीदूँगा।"

एक दिन राधा दूध लेकर कोठी मे पहुँची। पहुँचते ही देखा, मामी मोहन को फिटकार रही है। राधा ने पूछा, "क्या हुआ बहू जी ?" मामी ने मोहन की ओर तिरस्कार भरी आँखो से देखकर कहा, "यह मोहन बड़ा खिलाड़ी है, पढ़ना-लिखना इसे अच्छा ही नहीं लगता। इसके गुरु जी बैठे हैं, यह घर मे घुसा मेरे पीछे-पीछे छिपता फिरता है। कहती हूँ तो मुझसे झगड़ने लगता है।" राधा ने मोहन की ओर देखा। वह अपने अपराध पर मानो लज्जित हो गया था। उसकी आँखें नीची और संभवतः आँसुओ से भरी हुई। उसकी मामी ने राधा से उसकी शिकायत की, यह मोहन को अच्छा न लगा। उसे अपने अपराध का उतना

दुख न था जितना यह सोचकर कि राधा मुझे क्या समझेगी। राधा ने पूछा, "क्या है मोहन! मामी क्या कहती है?" उसने मीठे स्वर से मुस्करा कर कहा था। मोहन अपने हृदय का भार हलका करने के लिए उसके समीप आ पहुँचा। राधा ने उसे हिलाकर पूछा, "बोलते क्यों नहीं? तुम मुझसे भी रूठ गये! वाह जी! तुम बड़ी जल्दी रूठते हो।" वह उसे पकड़कर मनाने लगी, हँसाने की चेष्टा करने लगी। मोहन अभी तक अपराध की अनुभूति और अपनी आत्मग्लानि पर विजय न पा सका था। उसने दबी ज़बान मे कहा, "राधा, मैं पढ़ूँगा—पर गुरु जी से नहीं, तुम पढ़ाओगी तो पढ़ूँगा, राधा!" यह कहकर वह राधा से लिपट गया, मानो उसे यह शंका उठी हो, कि उसके प्रस्ताव के विरोध मे उसे कोई पकड़ ले जायगा। राधा चिन्तित हो गई। वह पढ़ी-लिखी न थी। ये सब उसके लिए वर्जित वस्तुएँ थी। अतः उसे अब चिन्ता न रही। उसने हँसते हुए कहा, "मोहन, मै तो पढ़ी लिखी नहीं हूँ। कैसे तुम्हे पढ़ाऊँगी?" मोहन चिन्ता मे पड़ गया। "राधा पढ़ी-लिखी नही है। मेरी तरह उसे भी डाँट सुननी पड़ेगी," उसने दृढ़ता से कहा, "अच्छा मै तुम्हे पढ़ा दूँगा। राधा! मेरे पास अच्छी-अच्छी किताबें हैं।" "पर तुम स्वयं तो पढ़ते नहीं। मुझे कैसे पढ़ाओगे मोहन?" राधा ने उत्तर दिया। दाता का ऐन वक्त पर मानो जेब कट गया हो। मोहन अवाक् होगया। यह उसने न सोचा था। कोई उपाय न देख उसने दृढ़ता से कहा, "अच्छा राधा मै पढ़ लूँगा तब तुम्हें पढ़ाऊँगा।" राधा ने यों ही उत्तर दिया, "हाँ जी, पढ़ लो तब मुझे पढ़ाना मोहन! अब गुरु जी के पास पढ़ोगे न।" मोहन राज़ी हो गया। उसने निश्चय कर लिया कि जल्दी-जल्दी पढ़कर राधा को पढ़ाऊँगा। यह विचार उसको बड़ा प्रिय लगने लगा। वह ख़ूब जी लगाकर पढ़ने लगा।

जब राधा पहुँचती तब मोहन उसे अपना पाठ सुनाने के लिए हठ करता। उसे सुनाना पड़ता था। वह तख्ती पर 'राधा' लिखकर लाता—टेढ़े-मेढ़े अक्षरो मे। राधा से कहता, "पढ़ो।" राधा उसे टालने के लिए पढ़ देती "मोहन।" मोहन उसकी मूर्खता पर हँसने लगता। वह अपने को पढ़ा-लिखा समझता, कहता, "तुम अपना नाम नही पढ़ सकती राधा!" राधा उसकी प्रसन्नता देख प्रसन्न हो जाती, उसके भोलेपन पर लट्टू हो जाती। मोहन जब राधा को पाता तो बड़े उत्साह से पढ़ने-लिखने की बातें करता, अपनी पुस्तको के सुन्दर रंगीन चित्र दिखाता, अपनी याद की हुई कहानी सुनाता, हँसता और हँसाता। राधा उसकी किताबें देखती, उसके बताये हुए अक्षरो को पहचानने का प्रयत्न करती, उसकी कहानियाँ याद करती और मोहन को सुनाकर स्मरण रखने का अभ्यास करती।

× × ×

मोहन अब स्कूल मे पढ़ता था—अगरेज़ी स्कूल मे। उसे अब अपनी किताबो से कम फुर्सत मिलती। राधा अब दूध लेकर कोठी मे नही जाती, उसकी गाय अब दूध नही देती थी। वह किस बहाने वहाँ जाती? जाना चाहती पर न जाती। मोहन अपनी किताबो, अपने पाठो, अपने स्कूल, अपने हाकी क्रिकेट के मैचो मे धीरे-धीरे रमने लगा। राधा के घर आने, उसके साथ खेलने का अब उसे कम अवकाश मिलता। पर अब भी उसे राधा भूली न थी। वह स्कूल जाते हुए उसके घर की ओर से निकलता। क्षण भर द्वार पर खड़ा होता और एक बार पुकारता, "राधा!" राधा दौड़कर द्वार खोलती; देखती मोहन आगे बढ़ गया है। वह दरवाज़ा से सिर निकाल कर देखती। वह मुड़कर देखता। वह बुलाती, वह आगे बढ़ा जाता और कहता जाता, "स्कूल को देर हो रही है।" राधा द्वार बन्दकर मोहन की

बाल-क्रीड़ाओ का चिन्तन करती, सोचती, 'छुट्टी पावेगा तो आयेगा।'' वह लौटते समय आता, बैठकर बाते करता, कहता—"राधा, कुछ खिलाओ। अब तो तुम कुछ खिलाती ही नही। मक्खन दूध दही कुछ भी नही।" राधा दुखी हो कहती, "मोहन खिलाऊँगी गाय को ब्याने दो।" और वह ढूँढकर कभी गुड़, कभी कुछ लाकर देती। मोहन उसे प्रेम से खाता। राधा पूछती, "मोहन, तुम अब आते क्यो नहीं ?" मोहन कहता, "पढने से तो छुट्टी ही नही मिलती राधा! और फिर आता तो हूँ। एक बात है पर कहूँगा नही, तुम्हे दुख होगा।" राधा हँसती हुई पूछती, "क्या है मोहन ? कहो न तुम्हे मेरी कसम।" मोहन दुख से, बेबसी से कहता, "लड़के मुझे चिढ़ाते है। कहते हैं अरे मोहन अहीरन के घर जाता है!" राधा पर उस उपहास का कुछ प्रभाव न पड़ता। वह पूछती, "और तुम्हे मेरे घर आने की इच्छा होती है ?" मोहन अपने हृदय को ढूँढ़ता हुआ कहता "हाँ, होती है राधा! पर कब आऊँ ? छुट्टी नही मिलती है।" मोहन चला जाता। राधा उसे विदा कर देती।

× × ×

अब न वह मोहन रहा, न वह राधा। मोहन अब अँगरेजी मिडिल मे पढ़ता था। वह बारह वर्ष का हो गया था। राधा पूर्ण युवती हो गई थी। वह साधारण अहीरिन की लड़की थी। पर वसत केवल रसाल-वन ही को शोभा से नही भर देता। अब राधा देखने मे सुन्दरी लगती थी, पर उसको इसका ज्ञान न हुआ, और न हुआ उसके मोहन को ही इसका कुछ भी ज्ञान। उसका पिता अवश्य उसकी बढ़ती हुई आयु और अपना बढ़ता हुआ बुढ़ापा देखकर कुछ चिन्तित हो जाता। वह निर्धन उसे कैसे विदा करता ?

मोहन के दर्शन अब दुर्लभ होते जाते। वह कभी-कभी उसी

गली से, राधा की टूटी झोपड़ी के द्वार के सामने से, अपनी परीक्षा की चर्चा करता हुआ, अपनी टीम की प्रशंसा करता हुआ, अपने सहपाठियों के साथ निकलता। राधा उसे देख लेती, उसे पुकारना चाहती; पर न पुकारती। मोहन एक बार उसके द्वार की ओर देखता हुआ आगे बढ़ जाता। राधा उसके घर जाकर उससे मिलना चाहती, अपने दिल की बातें करना चाहती। उसका पिता अब न रहा; पर वह न जाती। कह नहीं सकते कि मोहन के मन की क्या दशा थी? पर वह न कभी राधा के घर आता और न कभी उससे बातें करने का अवसर ढूँढ़ता। समाज के भय का भयानक भूत मानो धीरे-धीरे उसके मन में घर कर रहा था। हो सकता है, राधा के मन में वह उससे पहले पैठ चुका हो।

मोहन अब उस गली से भी जाता न दिखाई देता। वह अब कालेज में पढ़ता था और विश्वविद्यालय के बोर्डिंगहौस में रहता था। राधा ने इतना कहीं से सुन रक्खा था। वह पूछती फिरती, "कालेज क्या है? बोर्डिंग क्या है? कहाँ है? वहाँ से लोग कब लौटते हैं?" राधा ने सुना, 'कालेज में छुटियाँ होती हैं, छुट्टियों में लोग घर आते हैं।' वह आशा करने लगी, मोहन को भी छुट्टियाँ मिलेंगी, वह भी घर आयेगा। छुट्टियाँ आईं। मोहन घर आया। पर आते ही पहाड़ चला गया। राधा मोहन को न देख सकी। पर वह निराश न हुई। सोचती, कभी आवेंगे ही। पर वह उसके घर कभी न आया।

मोहन से मिलने के लिए राधा अधीर हो उठी। मोहन को एक बार देखने की अभिलाषा उसे व्याकुल करने लगी। मोहन आया है, राधा ने सुना। उसका विवाह होने वाला है, यह भी उसने सुना। वह लज्जा छोड़कर उसके घर जा पहुँची—उसे देखने के लिए—उससे बातें करने के लिए। उसने देखा वहाँ पहुँचकर, मोहन वह मोहन नहीं है, वह सूट-बूट-धारी, दाढ़ी-मूँछ-हीन, एक

हृष्ट-पुष्ट पुरुष हो गया है। वह जाने किस आशा से, जाने किस उमंग से, उसके सामने जाकर खड़ी हो गई। मोहन ने उसकी ओर देखा—निर्विचार देखा। राधा इसका आशय न समझ सकी। मोहन ने मुँह फेर लिया। किसी की डाँटने की आवाज़ राधा के कानो मे पड़ी, "कौन है रे! वहाँ साहब के पास जा कर खड़ी हुई है।"

राधा वहाँ से भागी। भागी-भागी घर पहुँची। अब उसे मोहन को देखने की इच्छा नही रही और न कभी उसके घर जाने का वह नाम लेती। वह अकेली बैठी अपने बाल-मोहन का चिंतन किया करती—उस मोहन का जो उसे चिढ़ाता था, परेशान करता था, मारता था, पीटता था; उसके घर पहुँचकर दूध पीता, गाय दुहता, ऊधम मचाता। उसे लोग पगली कहते, पर उसके किसी व्यवहार मे पागलपन नही दिखाई पड़ता। हाँ, यदि कोई उसकी बिदाई की बात चलाता तो वह उसे गालियाँ देती, मारने दौड़ती। क्या वह सचमुच पागल थी?

× × ×

सूर के समालोचक राधा के आचरण की आलोचना करते हैं। वे इस राधा के आचरण की भी आलोचना करेंगे। इसका भी नाम राधा था!

वह भोली-भाली राधा!

कवि

वह युवा था। निर्धन, अनाथ था। सुन्दरता उसकी पैतृक सम्पत्ति थी। ब्रह्मचर्य का तेज उसके चेहरे पर फूटा पड़ता था। वसंत की वायु उसके अंतःकरण मे कल्लोल करती थी। अज्ञात आनन्द से वह चंचल रहता था। नित्य वह गुनगुनाता हुआ उसी अट्टालिका के सामने से होकर, उसी मस्तानी चाल से निकलता था। उस भव्य प्रासाद को देख, उसकी सुन्दरता पर मुग्ध हो, वह केवल मुस्करा देता था। फिर न जाने क्या गुनगुनाता हुआ वह गंगा के तट की ओर प्रस्थान करता था। उसका अस्फुट गान केवल वही सुनता था, उसकी हृदयतन्त्री की मधुर झंकार केवल उसी के कानो मे पड़ती थी। गंगा-तट से मध्यान्ह के समय वह लौटता था—उसी मस्तानी चाल से, उसी प्रकार अपनी तूमड़ी पर ताल देता हुआ। अंतर केवल इतना रहता कि तूमड़ी की ध्वनि कुछ गम्भीर रहती। कभी-कभी उसमे का जल कुछ छलक उठता।

संसार का अस्तित्व उसे केवल एक बार समझ पड़ता, सो भी कब जब उसे भूख सताती थी। एकादशी का दिन था। प्रायः सभी हिन्दू इस दिन व्रत रखते है। वह हिन्दू था। माता-पिता के संसर्ग से उसने यह व्रत रखना सीखा था। साधुओ के सत्संग ने उसे इसका महत्त्व समझाया था।

वसंत की वायु मंद-मंद वह रही थी। प्रकृति ने नये सिरे से शृंगार किया था। देवी की सुन्दरता उसके हृदयपटल पर अद्भुत

प्रभात्र अंकित कर रही थी। उसका हृदय चचल हो रहा था। उसकी आँखे प्रकृति की सुन्दरता देखने से थकती न थी। उपवन मे बैठा वह कोकिल की मधुर तान के लिए कान लगाये था। कुररी की करुण स्वरावली उस के हृदय मे हूल सी पैदा करती थी। लतागण मस्त होकर झूम रहे थे। उसके मानस मे भावों की लहर उठ रही थीं। भ्रमरो का गुञ्जार सुन वह गुनगुनाता था। गुनगुनाना चचरीको की गुजार की भाँति ही मधुर, पर अस्फुट था। कितनी देर तक वह इस प्रकार गुनगुनाता रहा; उसे इसका ज्ञान नही रहा। अनन्त 'काल' का सांसारिक माप उसके लिये विडंबना थी।

सूर्य देव अपनी यात्रा समाप्त कर थके-माँदे मानो प्राचीदिशा की गोद मे विश्राम करने जा रहे थे। पश्चिमीय क्षितिज पर मखमली सेज की लाली दिखाई पड़ने लगी थी। पक्षीगण इस महोत्सव पर कल-गान करने लगे थे। सध्या का आवरण विश्व को धीरे धीरे अपने अचल मे छिपा रहा था। द्विजगण भी धीरे-धीरे अपने बसेरे मे पहुँचने लगे थे। वनस्पति-संसार शांत सागर मे निमग्न हो रहा था। निशीथ की निस्तब्धता फैल चुकी थी।

वह अशांत हो उठा। चन्द्रदेव मुस्कराते हुए क्षितिज पर से झाँकने लगे थे। वह कल्पना के लोक से खिसककर मर्त्यलोक मे आ गिरा। उसकी स्वप्न निशा मे मानो प्रभात हो उठा। भूख उसे सताने लगी। उदर पोषण के निमित्त उसे चिंता हो उठी। वह उठ बैठा और चल पड़ा उसी अट्टालिका की ओर। द्वार पर पहुँच उसने यथाभ्यास एक बार ऊपर देखा—जाने किसे उसकी उत्सुक आँखें ढूँढ रही थी। कोई उत्तर न पा, किसी को न देख वह परिचित की भाँति प्रांगण मे प्रविष्ठ हुआ। आँगन से पहुँच उसने पुकारा उसी भाँति मधुर शब्दो मे, "माँ! भोजन मिले!" एक बार उसने फिर पुकारा और फिर बैठ गया, उस आँगन के

धुले पत्थर पर पलथी मारकर, और लगा फिर झूम-झूमकर जाने क्या गुनगुनाने—अपने जघो पर ताल देता हुआ।

सीढ़ी पर किसी के कोमल चरणों की आहट सुनाई दी। किंकिणी और नूपुर की मधुर ध्वनि उसके कानो मे पड़ी। उसके अस्फुट गान को वह मानो वीणा का सहयोग दे रही थी। वह अपने को भूल सा गया। उसकी गुनगुनाहट वसंत के नव चचरीक कमलो को खिलानेवाली गंभीर-मधुर-संगीत-स्वरावली मे परिणत हो उठी।

उसने ध्यानमग्न हो—चकित विस्फारित नेत्रो से देखा। बिजली के प्रकाश मे जगमगाती हुई एक सुन्दरता की मूर्ति उसके सामने खडी थी। उसका यौवन वसन्त की मनमोहिनी ऊषा की भाँति था। वह विधवा थी—उसके सुन्दर भाल पर सौभाग्य की सिन्दूरमयी रेखा क्षण भर के लिए आकर विलीन हो चुकी थी। उसके उदय-अस्त का ज्ञान उसे अभी तक न हो पाया था। समाज की प्राणघातिनी उस प्रथा ने उसके जीवन का मार्ग उसके अनजान मे पहले ही से कटकमय बना दिया था। पर वह प्रसन्न थी। अज्ञानता उसकी प्रसन्नता की जननी थी।

उसकी आँखों से पातिव्रत का तेज निकलता था। उसके कोमल मुख पर सौम्यता और सुकुमारता खेल रही थी। उसके मानस की चचलता, उसकी लज्जा और कुल-मर्यादा की सीमा को उल्लघन करने वाली न थी। वह मुग्धा थी, पर विधवा थी। अपने मन की चचलता का कारण वह न जान सकती थी, और वह किसी से पूछ भी न सकती थी।

उसका पिता धनीमानी पुरुष था। यद्यपि लडकपन मे उसके जीवन का वैधव्य-विधान हो चुका था पर अकेली संतान होने के कारण माता का उस पर अपार स्नेह था। विधवा थी तो क्या, पर वैभव की बाहरी ठाट बाट की दासता से उसके माता-पिता

उसे मुक्त न कर सकते थे। एकादशी के दिन एक ब्राह्मण को खिलाकर खाना उसका धर्म था। यह धर्म था, क्यों था। इसकी जाँज उसने कभी न की थी। उसने ब्राह्मण युवक की टेर सुनी। उसकी वाणी से वह परिचित थी। माता काम मे व्यस्त थी। वह फलाहार की थाली लेकर चल पड़ी। क्यो ? पर वह रोक न सकी अपने को। उसका हृदय उछल रहा था। क्यो उछल रहा था ? वह क्या समझती। पर वह उतरी सकुचाती हुई, धीरे-धीरे सोपान पर पैर रखते हुए। उसने अतिम सीढ़ी पर पैर रक्खा। उसकी दृष्टि उस युवक पर पडी। वह पलथी मारे जाने किस विचार मे मग्न था। उसने उसे देखा, देखती रही, उसकी चच-लता एक बार उठी, फिर जाने कहाँ छिप गई ! उसका शरीर शिथिल होने लगा। उसके पैर लड़खड़ाये। उसने अपने को सँभाला। युवक के सामने थाली रखकर वह कठिनता से कह सकी "लीजिए फलाहार प्रस्तुत है !"

वह चौंका, मानो घोर निद्रा में निमग्न था। उसने गर्दन ऊँची की, आँखें उठाईं। सामने स्वर्गीय सौन्दर्य की साक्षात अद्भुत प्रतिमा खड़ी थी। निश्चल निर्निमेष। उसने देखा अचल अप-लक आँखो से। उसने गर्दन झुका ली। मन-ही-मन प्रणाम किया, ध्यान किया देवी अन्नपूर्णा की उस दिव्य मुद्रा का, और मुग्ध हो गया वह उस मानवी सौन्दर्य की प्रतिमा पर। वह क्षण भर निश्चल बैठा रहा और समझने की चेष्टा करने लगा—अपने अतःकरण में मचे उथल-पुथल को। वह ठगमारी खडी थी, निर्विचार, निर्निमेष और निश्चल !

उसने थाली खिसका दी। वह उठ बैठा। उसकी भूख मानो तृप्त हो चुकी थी। उसने एक टक देखा, सिर से पैर तक देखा—झुककर प्रणाम किया और लौटकर गुनगुनाता हुआ चल पडा प्रांगण से बाहर। वह घबरा उठी और भागी सीढ़ियो से, शीघ्रता

से, घबराई हुई। उसके कारे-सटकारे केश उसके पीछे लहरा रहे थे, मानो अज्ञान के काले बादल उसका पीछा कर रहे हो।

युवक घर की ओर चला, अपनी झोपड़ी की ओर। उसकी मुद्रा गंभीर थी, मलिनता उसके आनन पर आक्रमण कर रही थी। उसके हृदय मे रह-रहकर एक अज्ञात पीड़ा उमड़ रही थी। उसके मानस मे उथल-पुथल मचा था। वह धीरे-धीरे चलकर अपनी टूटी झोपडी के द्वार पर पहुँचा। आह ! आज उसे यह झोपड़ी श्मशान सी प्रतीत हो रही थी। यही इसके पूर्व उसके लिए कवियो के कल्पित प्रासाद के तुल्य थी।

युवक फिर कभी नगर मे दिखाई न पड़ा। नागरिको को इसका ध्यान भी न हुआ। नगर के जीवन मे मानो कोई घटना ही न हुई। हाँ, यदि किसी के मानस मे अप्रकट लहरें उठी वा उठती रहीं होंगी तो वह उस विधवा के, जिसका नाम करुणा था। पर उसने कभी इसकी चर्चा न की। केवल मन मे मुरझाती रही उस युवक के दर्शनो के लिए। लालायित थी उसकी वाणी मधुर सुनने के लिए। जानें कितने बार, दिन मे कै बार वह झरोखें से राजमार्ग की ओर झाँकती, मन-ही-मन उस युवक की कल्पना करती, उसके लिए निशीथ की निस्तब्धता मे विसूरती, रोती; पर उसकी झलक तक उसे फिर न मिली। वह विधवा मन मे विरहिणी बन गई। वह विरही हुआ या नही—इसकी किसे खबर थी।

वर्षों बाद उस नगरी के नागरिक आपस मे शकित नेत्रो से चर्चा करते हुए देखे गये। कोई कहता, 'आज अर्धनिशा मे मुझे ऐसा जान पडा, मानो नगर के दक्षिण की आम्रवाटिका मे कोई वीणा पर कुछ गा रहा हो।' दूसरे ने कहा, 'अजी ! मुझे भी एक दिन ऐसा सुनाई पड़ा मानो गङ्गा की उस पार की बालुकामय भूमि के निकट झाऊ के झुरमुटो के बीच से सगीत-लहरी गगा के विशाल वक्षस्थल पर खेलती हुई तट पर टकरा रही हो।'

तीसरे ने भी इस बात का समर्थन करते हुए कहा, कि उसने भी संध्या समय पूर्णिमा का प्रतिबिंब देखते हुए तट पर बैठ कर ऐसा ही एक करुण आलाप सुना है। सभी अपना-अपना अनुभव सुनाकर इस बात का समर्थन करते कि समय-समय पर जाने कब किधर से किसी के गाने और वीणा बजाने का स्वर सुनाई पड जाता है। पर कोई यह निश्चय न कर पाता कि कौन और कहाँ बैठकर, कब गाता है।

नागरिक किसी निश्चय पर पहुँचने में असमर्थ हो कुतूहल-ग्रस्त, शंकित और आश्चर्य मे डूबने-उतराते थे। कुछ दिनों तक यह चर्चा के रूप मे रही। फिर कूतूहल ने इस पर विचार करने पर विवश किया। बहस हुई, मंत्रणा हुई, उत्सुकता बढ़ी, साहस जगा, फिर कुछ लोगो ने सगीत के उद्गम का पता लगाने का संकल्प किया। पर सकल्प केवल संकल्प होकर रह गया। अंत मे लोग आलस्यवश तरह-तरह का समाधानकर चुप हो गये। समाधान ने आलस्य को संतुष्ट तो कर दिया पर हृदय की आशका को वह न दबा सका।

कुंभ का मेला लगा। देश के कोने-कोने से लोग इस अवसर पर त्रिवेणी की पुण्यभूमि मे धर्मार्थ आ पहुँचे। कितना जन सकुल था—कौन बतला सकता है। चारो ओर 'कल्प वासियो' साधुओ और यात्रियो के निमित्त पर्णशालाएँ बन गई थी। दिन भर की चहल-पहल के बाद, पहर रात के पश्चात् त्रिवेणी तट फिर ज्यो का त्यो शान्त हो जाता, थके-माँदे सभी सरदी मे सिहरते हुए निद्रा का आह्वान करते। उस समय जाने कहाँ से ऐसी स्वर्गीय सगीत की स्वर-लहरी जान्हवी की लोल लहरो पर लोटती हुई इस पार आकर टकराती। उसे सुनकर जागृत आत्माएँ आनन्द से नाच उठती। सोती हुई सुख की निद्रा मे सो जाती। दो एक दिन किसी ने इस पर ध्यान न दिया। फिर

लोग एक दूसरे से इसके विषय मे पूछने लगे।

करुणा ने भी सुना। वह अब वृद्धा हो गई थी। वैधव्य की लम्बी यात्रा का विषम पथ वह पार कर चुकी थी। समाज के कठोर शासन का उसने बड़ी भक्ति से निर्वाह किया था। व्रत, नेम और आचार का पालनकर यद्यपि उसने शरीर को बलिदान कर दिया था तो भी उस पर मण्डराती हुई सती की सुषमा की दीप्ति वह बुझा न सकी थी। 'लोगो' की आँखो से यह छिपा न था। हाँ! यदि छिपा था तो उसके अंत:करण मे विरह की वह चिनगारी, जिसे वह लाख प्रयत्न करके बुझाना चाहती थी पर वह बुझती न थी। सभव है यह उसके बस की बात न रही हो। पर वह विरह की चिनगारी बुझी न थी, यह निश्चत है। यह उससे भी छिपा न था।

करुणा 'कल्पवास' करने आई थी। वह साधु महात्माओ के दर्शन मे अधिक मन लगाती। शायद ही कोई जटाधारी भस्मधारी, मुञ्जमेखला पहननेवाला साधु बचा हो, जिसके चरणो मे उसने सिर न नवाया हो, जिससे उसने मोक्ष पाने की अभिलाषा न प्रकट की हो, जिसे उसने कुछ अर्पण न किया हो—चरस और भाँग-बूटी के लिए। लोगो ने उसमे जहाँ यह विशेषता देखी, वहाँ कुछ लोगो ने यह भी देखा कि वह एक साधु का एक बार दर्शन पाकर फिर कभी उसके दर्शनो को न जाती। वह ऐसा क्यो करती है? उन साधुओ मे वह किसे ढूँढना चाहती है?—कौन उत्तर देता इसका, सिवा करुणा के।

माघ मेले मे 'महात्मा' के दर्शनो के लिए सभी उत्सुक थे। उस पार उनके दर्शन के लिए आबाल-वृद्ध-वनिता सब दौड पड़े। लौटकर सभी के मुख पर उस दिव्यपुरुष के रूप की चर्चा थी। किसी ने कहा, 'कैसा सुन्दर रूप है, कैसा प्रशस्त भाल और कैसी सन-सी सफेद दाढ़ी और जटा है। देखने मे इतनी आयु होने पर

भी अभी युवा सा लगता है। कैसी मधुर वीणा बजाता है। कैसा स्वर और आलाप है। पर वह किसी से बोलते नही, किसी की ओर देखते नहीं। आँखे मूँदकर मस्त गाया करते है। उनकी उँगलियाँ वीणा के तन्तुओ मे ऐसी खेलती है, मानो लहरो पर मछलियाँ।'

करुणा ने भी 'महात्मा' का समाचार सुना। वह दर्शनो के लिए आतुर हो उठी और चल पड़ी। करुणा भीड़ के साथ गंगा उस पार महात्मा की निराली एकान्तमय कुटी की ओर चली जा रही थी। उत्सुकता उसे लिए जा रही थी पर उसका हृदय मानो अज्ञात भय वा आनन्द से विह्वल हो रहा था। उसे आशका हो रही थी कि कही उसका धड़कता हुआ हृदय एक दम धड़ककर बन्द न हो जाय। पर उसने अपने को सँभाला और हृदय पर पत्थर रखकर, इन्द्रियो पर अकुश रखकर, वह भी चली महात्मा के दर्शनो को।

महात्मा की कुटी गङ्गा के उस पार झाउओ के घने झुरमुट मे बनी थी। विस्तृत बालुकामय प्रदेश पारकर वहाँ पहुँचना पड़ता था। करुणा पहुँची। लोग वहाँ पहले ही से एकत्र थे। चारो ओर शान्ति का साम्राज्य था। कही कोई पत्ता न खड़कता था। यहाँ न धूई थी, न गाँजे की चिलमे, न चिमटा, न बहुरूपियो का परिधान। महात्मा के शुभ्र शरीर पर भस्म का लेप न था, उसके माथे पर रामनामियो का नम्बर न था। महात्मा निश्चल, भावनिमग्न बैठे थे। सिर पर अचल तुहिन-राशि सी श्वेत जटा सूर्य की प्रातःकालीन किरणो मे स्वर्णमयी हो रही थी। उनकी लम्बी सन सी सफेद दाढ़ी उनके वक्षस्थल को ढक रही थी। शरीर पर श्वेत परिधान था, कँधे पर वीणा की तूमड़ी थी। वे अपने को भूलकर, संसार को भुलाकर गा रहे थे। उनके गले का मधुर आलाप जाह्नवी के विस्तृत प्रशान्त वक्षस्थल को प्रकंपित

करता था। वीणा के सुन्दर तारो से उनकी चतुर ऊँगलियाँ क्रीडा कर रही थी। उससे निकली हुई स्वरलहरी आत्म-विस्मृति फैला रही थी। समस्त वातावरण मे एक अद्‌भुत प्रभाव व्याप्त हो रहा था। हृदय आनन्द-सागर मे डूबता-उतराता था। लोगों के कान सुधापान कर रहे थे, आँखें मोती बरसा रही थीं। प्रकृति नीरव हो रही थी।

महात्मा तन्मय होकर गा रहे थे। लोग तन्मय होकर सुन रहे थे। इसी निस्तब्धता मे एक वृद्धा अपने को सँभाल कर एकटक महात्मा के मुख की ओर देख रही थी। उसकी आँखें विस्फारित थी, आर्द्र थी, करुण थी। वह कठिनता से क्षण भर इस प्रकार देख सकी। उसकी आँखें बन्द हुईं, उसने मानो अपने को सॅभालने की चेष्टा की। वह सॅभली, जैसे दीपशिखा बुझने के पहले एक बार प्रज्वलित हो उठती है। वह धीरे-धीरे महात्मा को एक टक देखती हुई आगे बढ़ी। पास पहुॅचकर वह बैठ गई, उसने श्रद्धा से साष्टाँग दंडवत किया। उपस्थित लोग, आँखें मूँदे तन्मय होकर महात्मा का गान सुन रहे थे। किसी ने उसे झुकते न देखा।

उस वृद्धा ने दण्डवत करते समय महात्मा के चरण-स्पर्श किये थे। महात्मा के भावुक नेत्र खुले। उसने चारो ओर परिचित सी दृष्टि डाली। सामने वृद्धा को देख वे चौकीं, पर उसकी आँखो से मिलते ही निश्चल हो उठी। दोनो ने मानो एक दूसरे को पहचाना था। दोनो के नेत्र इस मधुर-मिलन पर मानो बन्द होना ही न चाहते थे। यह अवस्था क्षण भर ही रही। दोनो के होठो पर मुस्कराहट की रेखा उदय हुई। गात्र शिथिल हो चले।

× × ×

महात्मा का गान रुक गया। वीणा के तार टूट चुके थे। उपस्थित श्रोताओ की तन्मयता टूटी। लोगो ने आश्चर्य से देखा,

महात्मा के निष्प्राण शरीर के चरणो मे एक वृद्धा का मृत शरीर पड़ा है।

कवि और करुणा, इस मधुर मिलन का आघात न सह सके थे। कौन कह सकता है दोनो की आत्माएँ इस अधम लोक से प्रस्थान कर उस लोक मे स्वर्गीय संगीत की सृष्टि न कर रही होगी ?

वह करुणा थी। वह कवि था।

मुन्शी जी

मुन्शी जी मोहर्रिर थे, रजिस्टरी के। जाति के कायस्थ थे, अपने को चित्रगुप्त के पुत्रो मे से किसी एक का वशज बतलाते थे। थे पुराने वज़अ के—प्राचीन परिपाटी, सनातन रूढ़ियो का पालन करनेवाले। मँझोला कद, साँवला रङ्ग, दुबले-पतले आदमी थे। सदा वही चपकन, वही लखनवी घुटन्ने और वही सलीमशाही जूते पहनते, उसी प्रकार पट्टे रखते; वही एक ऐनक लगाये सदा लोगो ने उन्हे घर-बाहर देखा। उनमे न कभी परिवर्तन हुआ, न कोई फर्क आया। सदा वही एक रङ्ग, वही एक ढङ्ग।

मुन्शी जी अपने धुन के पक्के थे। जो बात उठाते थे, जन्म भर उसे छोड़ने का नाम न लेते। सवेरे उठते, नहा-धोकर पाठ करते, सामने के शिवालय मे जल चढ़ाते, सूर्य्य को अर्घ देते। दिन भर दफ्तर करते। सध्या को गप-शप, नशा-पानी। पक्के कायस्थ थे, अपने धर्म के पक्के। यम द्वितीया के दिन धूम-धाम से कलम-दावात की पूजा करते, चित्रगुप्त का चित्र बनाते। आचार-विचार उनका द्विजो से कम न था पर जनेऊ का उन्हे शौक न था। जब कायस्थो की वर्ण-व्यवस्था पर विचार होने लगा, तो मुन्शी जी को लोगो ने सलाह दी, "यदि चौथे वर्ण से बचना चाहते है तो जनेऊ धारण कर लीजिए।" मुन्शी जी इस पर झल्ला उठे। बोले, "जनेऊ पहनने से कोई द्विज होता है? उत्तम वर्ण होता है—आचार-विचार मे। पैसे का

जनेऊ किसी को ऊँचा-नीचा नहीं बनाता।" लोगो ने बहुत समझाया पर वे अपने धुन के पक्के थे। किसी की कब सुनने वाले।

× × ×

मुन्शी जी का विवाह बचपन मे हो चुका था। माता-पिता ने मरने के पूर्व अपना कोई कर्तव्य अधूरा नही छोड़ा था। वे तो अपना सब धर्म-पालन कर सुख से स्वर्ग सिधारे, पर मुन्शी जी को संसार मे अपने पैरो खड़े होने की समस्या हल करनी पड़ी। बेचारे थोड़े ही पढ़े-लिखे थे। बचपन मे करीमा रटी थी, थोड़ी-बहुत खालिकबारी पिता ने याद करा दी थी। लड़कपन मे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के मदरसे मे दर्जा चहारुम पास किया। मिडिल तक पहुँचते-पहुँचते अनाथ हो गये। अब रोटी का सवाल सामने आया। बेचारे को बहुत ठोकरें खानी पड़ी। थे मेहनती, मिलनसार और भाग्यवाले। विरादरी वालो ने मदद कर दी। रजिस्टरी मे मुहर्रिरी मिल गई। कुछ दिनो अप्रेंटिसी की। कुछ तजुर्बा हुआ। तब बीस रुपया माहवारी पर नियुक्ति का पत्र मिला। पत्र पाने के पहले ही घर मे पुत्री ने जन्म लिया। पहली नौकरी थी, पहली सन्तान थी। पति-पत्नी दोनो फूले न समाये। अपने भरसक कुछ उठा न रक्खा। दावतें, गाना-बजाना देना-लेना सभी कुछ हुआ।

मुन्शी जी अब आनन्द से दिन विताने लगे। बँधी तनख्वाह मिलती थी, कुछ ऊपर से मिल जाता था। घर मे दो ही प्राणी थे। खाने-पीने की कमी न पड़ती थी। पर यह सदा न रहा। लड़की उतनी ही छोटी न रही। वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी, साथ-साथ लगी बढ़ने माता-पिता की चिन्ता। मुन्शी जी लड़की को बहुत प्यार करते थे। पहली सन्तान और अकेली, फिर माता-पिता का प्रेम अधूरा क्यो हो। जब कभी पति-पत्नी बैठकर लड़की का खेल-कूद हँसी-विनोद देखते तो आपस मे कहते, "रानी बेटी का विवाह

राजा के यहाँ होगा।" मुन्शी जी रोब मे कह जाते, "ऐसा घर ढूँढूँगा कि हमारी रानी बेटी रानी की तरह रहे।" कह जाने के पश्चात् रह-रहकर उनके मन मे यह बात उठती, "आख़िर यह सब होगा कैसे?" यह अप्रिय विचार मुन्शी जी अपने ही तक रखते, वरन् उसे अपने मन मे भी भरसक आने न देते। क्या करते सोचकर? जो भाग्य मे होगा देखा जायगा। जहाँ अपना वश नही वही हम भाग्य का सहारा लेते हैं।

× × ×

लड़की धीरे-धीरे बढ़ने लगी। धीरे-धीरे वह घर का काम-काज सँभालने लगी। सीने-पिरोने लगी, पर उसे काले अक्षर से भेंट न हुई। मुन्शी जी लड़कियो को पढ़ाने के बड़े विरोधी थे। महल्ले मे लड़कियो का एक मदरसा था, पर मुन्शी जी को वह चकले से भी अधिक खटकता था। यदि कोई लड़की के पढ़ाने-लिखाने की बात छेड़ता तो मुन्शी जी बिगड़ खड़े होते, "यह भी कोई भलमनसाहत है? भले घर की लड़कियाँ पढ़-लिखकर क्या करेंगी? उन्हे नौकरी करनी है? वकालत करनी है?" पड़ोस मे एक नये-रोशनी के सज्जन रहते थे। मुन्शी जी उनकी हँसी उड़ाया करते, पर पड़ोसिन से मुन्शी जी की पत्नी का प्रेम था। पड़ोसिन पढ़ी-लिखी थी। उनकी बातें मुन्शियाइन को कुछ अच्छी लगती थी। एक दिन मौका पाकर उन्होने मुन्शी जी से कहा, "लल्ली अगर कुछ पढ़-लिख लेती तो अच्छा होता। कुछ गाना-बजाना सीख लेती तो क्या बुराई थी? पड़ोसिन की लड़की राधा कैसा टें-टें पढ़ती है, कैसे सुरीले स्वर मे गाना गाती है। कहने को आठ ही वर्ष की है, पर हारमोनियम और सितार बजाने मे इनाम पा चुकी है। आप क्यो नही इस पर कुछ ध्यान देते?"

मुन्शी जी चुप-चाप भोजन कर रहे थे। बात टालना चाहते

थे, पर जब मुन्शियाइन ने कई वार वही बात दोहराई तो एकाएक मुन्शी जी के ज़ब्त का बाँध टूट पड़ा। वे आपे से बाहर हो गये। लगे बकने, "सोहबत का असर हुए बिना नहीं रह सकता। दो-चार दिन साथ बैठीं और रङ्ग गईं नये रङ्ग मे। तुम्हे शर्म नही आती ऐसी बातें करते! अपनी जाति की ओर देखो, अपनी बिरादरी का ख़्याल रक्खो—लोग क्या कहेगे? तुम्हे पसन्द है अपनी लड़की को सरे बाज़ार स्कूल भेजना, मरदो से गाना-बजाना सिखवाना? तुम उसे गृहस्थ के घर भेजोगी या तुम्हे उससे लेक्चर दिलाना है, वकालत करानी है? क्या उसकी कमाई खाना चाहती हो? छी! छी! अपनी ही सन्तान के बारे मे यह सब सोचना! राम राम! शिव! शिव!"

मुन्शियाइन डर गईं। यो भी डरती थी, पर अब तर्कों के सामने निरुत्तर हो गईं। उन्हे अपने प्रस्ताव पर अभी तक स्वयं विश्वास न था। वे मैदान हार गईं। पर दुःखी न हुईं, वरन् उन्हे दुःख हुआ इसका कि ऐसी अनुचित बात उनके मुख से निकली कैसे। बेचारी अपराधिनी की भाँति चुप हो गईं। मुन्शी जी उन्हे निरुत्तर देख शान्त हो गये। उन्हे अपने क्रोध आने पर पछतावा होने लगा। उन्होने फिर प्रेम से, अनेक प्रकार तर्क लगाकर समझाया, कि लड़की को पढ़ाना लिखाना—इस बात की कल्पना भी किसी भले आदमी को न करनी चाहिए और विशेष कर कायस्थो को। बेचारी मुन्शियाइन ने इसे पाठ की तरह याद कर लिया। फिर कभी किसी ने लड़की को पढ़ने-लिखने की बात न छेड़ी।

लड़की बढ़ती गई, जैसे ससार की सभी चैतन्य वस्तुएँ बढ़ती है। वह विवाह की अवस्था के निकट पहुँची—उस अवस्था के निकट जिसे सनातनी लोग 'विवाह के योग्य'

अवस्था बतलाते है, अर्थात्—आठवें वर्ष को। आधुनिक विचार के लोग इस पर हँसेंगे, इसे असम्भव समझेंगे। पर हम उन्हे पंडितो के शास्त्र की उक्ति सुनाते हैं—"अष्टवर्षा भवेत गौरी दशवर्षा च रोहिणी··· ·····।" अब शास्त्र-प्रमाण इससे अधिक क्या होगा ? हमारे मुन्शी जी इस शास्त्र के विरुद्ध आचरण करने के पक्ष मे न थे। वे लड़की की शादी ढूँढ़ने लगे। अच्छा वर अच्छा घर—उनका ध्येय पहले से था। दोनो एक साथ मिलना असंभव था और उनमे से एक के लिए भी मुन्शी जी की बिसात न थी। कहाँ से लाते—इतना धन उन्हे खरीदने के लिए। अगर लड़का हाई स्कूल पास है तो दो हज़ार चाहिए, अगर खानदानी है, कुछ जायदाद है, तो पाँच हज़ार चाहिए। बीस रुपये महीने के मुन्शी जी इतना दाम सुनकर हताश हो जाते। फिर भी उन्हे आशा थी कि सभी ऐसे कठोर न होगे, सभी ऐसे अन्यायी न होगे। आशा हमारे जीवन की संजीवनी है।

मुन्शी जी निराश न हुए। वर्षों घर-वर ढूँढते रहे। पर बिना पैसो के लड़की के लिए न घर मिलता दिखा, न कोई वर नज़र आया। अपनी बिरादरी के की इस कठोरता पर उन्हें क्रोध आने लगा। पर क्या करते ? क्या अपनी लड़की भाड़ मे झोक देते ? अन्त मे, मुन्शी जी ने विवश हो कर्ज़ लेकर लड़की की शादी की। अच्छे घर मे, अच्छे वर के साथ। लडकी ससुराल बिदा हुई, पर मुन्शी जी पर तीन हज़ार के कर्ज़ का बोझ लद गया। मुन्शी जी ने सोचा, "अब करना ही क्या है ? ज़िन्दगी भर मे कर्ज़ अदा करूँगा। मर जाऊँगा तो मेरा कोई क्या ले लेगा ?"

बहुत दिनो बाद मुन्शी जी की पत्नी का बच्चा होने को हुआ। पति-पत्नी दोनो को इसकी कोई सम्भवना न थी। पर दैवी को कौन टालता ! दोनो इस पर बड़े चिन्तित हुए कि कहीं

फिर लड़की न हो, नही तो बे मौत मरे। एक ही की शादी मे इतना बड़ा बोझ लदा जो सारी उम्र मे उतारे न उतरेगा, दूसरी अगर एक और हुई तो बस अनर्थ ही हुआ। उसका पार लगाना ईश्वर के भी बस का नही। मुन्शी जी अधिक चिन्तित थे, पर कभी-कभी सोचते, अगर दैव की कृपा से पुत्र हुआ तो ईश्वर ने मानो अपने हाथो उबार लिया। सारा कष्ट कट जायगा। पहले यह विचार केवल निराशा की सीमा पर धुँधले प्रकाश की भाँति उदय हुआ था। धीरे-धीरे कल्पना उसका आह्वान करने लगी। यह धुँधला प्रकाश मधुर कल्पना का सुयोग पाकर धीरे-धीरे मुन्शी जी को उज्ज्वल-भविष्य की याद दिलाने लगा। वे नित्य परमात्मा से प्रार्थना करते, "प्रभो, पुत्री न देना! नहीं तो मेरा इस संसार-सागर से उबरना दुष्कर होगा। दयानिधे! दीन की पुकार की अवहेलना न करना। मुझे धन न दीजिए, पर पुत्री न दीजिए। नही तो प्रभो! भूखो मरकर भी उसका ऋण न चुका सकूँगा। बस एक ही काफी थी। उस जन्म के पापों के लिए यही यथेष्ट प्रायश्चित थी।"

परमात्मा ने मानो मुन्शी जी की पुकार सुन ली। मुन्शी जी के पुत्र उत्पन्न हुआ। पति-पत्नी को पुत्र होने का उतना आनन्द नही हुआ जितना पुत्री न होने का। दोनो फूले न समाये। मित्रगण, बिरादरी वाले, सभी दावतो का तकाजा करने लगे। मुन्शी जी उनकी बात कैसे टालते? आखिर समाज के प्राणी थे। बिरादरी मे रहना है। मित्रो से नित्य काम पड़ता है। खूब धूम-धाम से आनन्द मनाया गया। मुन्शी जी के सिर पर कर्ज का बोझ कुछ और भारी हुआ, पर अब मानो उन्हें उसका भारीपन नही अखरता था। सोचते थे, "ईश्वर ने पुत्र दिया है, तो कुछ सोच समझ कर ही। वह पार लगावेगा। अब उन्हें चिन्ता न थी। उनकी चिन्ताएँ, उनकी परेशानियाँ, सभी पुत्र के

भविष्य पर निर्भर थी। उनका पुत्र मानों इन्ही सब को मिटाने के लिए पृथ्वी पर जन्मा था।

पति-पत्नी दोनो पुत्र को बेहद प्यार करते। उनकी सारी अभिलाषा और आशा का विरवा वही था। ज्यो-ज्यो वह बच्चा बढ़ता, उनके उज्ज्वल भविष्य की अवधि मानो घटती जाती थी। वे उसके लालन-पालन मे किसी प्रकार की कोर-कसर न करते। मुन्शी जी वही थे, उनकी आमदनी वही थी, पर उनके पुत्र के लालन-पालन से कोई यह नहीं कह सकता था, कि यह मोहर्रिर का लडका है। लडका अच्छी तरह पला, होनहार निकला, पढ़ने-लिखने मे तेज़, देखने मे सुन्दर, शरीर का हृष्ट-पुष्ट, चाल-चलन का सुशील, ग्रेजुएट हुआ। परीक्षा मे प्रथम आया, चारों ओर से मुन्शी जी को बधाइयाँ मिलीं। मुन्शी जी सरकारी नौकर थे, और वह भी छोटी-मोटी नौकरीवाले। वे समझते थे बड़ी नौकरी की कदर। गज़ेटेड-आफिसर उनके लेखे करोड़पति था। इससे कम अपने पुत्र के लिए वे किसकी कामना करते? उन्होने लड़के को डिप्टी कलेक्टरी की परीक्षा मे बैठाया। लड़का मेहन्ती था, प्रतिभावान था। सर्वप्रथम आया, उसकी नियुक्ति हो गई। मुन्शी जी ने निश्चिन्तता की साँस लेनी चाही, पर जब बैठकर हिसाब लगाया तो कुल मिला कर उन पर पंद्रह हज़ार के ऋण का बोझ हो गया था। बेचारे के पैरो से अभी चिन्ता की बेढ़ी न कटी थी, पर उन्हे विश्वास था कि अब कटने की अवधि निकट है। उनका पुत्र विवाह के योग्य हो चुका था।

लडका डिप्टी कलेक्टर हुआ। मुन्शी जी की मर्यादा बढ़ी। अब वे डिप्टी कलेक्टर के पिता थे। दफ्तर में अब उनकी धाक थी। लोग उनसे सहमते थे। बिरादरी में अब उनका मान होने लगा। वे ऊँचे घर के माने जाने लगे। लोग उन्हे खानदानी कहते। लड़के की शादी आने लगी। मुन्शी जी को अब लड़की

वालो से कसर निकालने का मौका मिला। जितना ही वे अपनी लड़की की शादी मे भुगते थे, उतना ही वे दूसरों को भोगाना चाहते थे। 'जाके पैर न फटी बिवाई सो का जाने पीर पराई', यह किसी मूर्ख ने कहा होगा। मुन्शी जी सोचते थे एक हाथ से दिया है तो दूसरे हाथ से लेंगे। इसमे क्या अन्याय है? यह तो सीधा सौदा है। यही नीति है; यही ससार का नियम है। दूर-दूर से लोग शादी का प्रस्ताव लेकर आते। मुन्शी जी उनसे मोलभाव करने को पहले ही से तैय्यार रहते। उनका सीधा प्रश्न होता, "क्या दोगे?" लोग भूमिका बाँधते। कहते, "हमारा कुल अच्छा है, हम खानदानी हैं, लड़की सुन्दर है, पढ़ी-लिखी है, सुघर है।"

मुन्शी जी उत्तर देते, "लडके वाले रुपया देखते हैं, रुपया। आप कितना देंगे? मैंने भी लड़की की शादी की है। किसी ने पूछा था, 'लड़की कैसी है'? सभी पूछते थे, 'कितना दोगे?' मै भी ईश्वर की दया से लड़के वाला हूँ, मै भी पूछता हूँ, आप कितना देंगे?" लोग चुप हो जाते। मुन्शी जी पद्रह-बीस हज़ार का आसमान दिखाते। किसी की हिम्मत न होती। ख़ानदानी घरानो मे रुपया कहाँ? और रुपये वाले मुन्शी जी को ख़ानदानी नही समझते थे!

कितने आये, कितने गये। मुन्शी जी ने किसी को मुँह नही दिया। उन्होंने निश्चय कर लिया था, पंद्रह हज़ार से कम पर हामी नहीं भरूँगा।' स्त्री ने समझाया, "लड़का सयाना है, कमाता है, उसकी शादी हो जानी चाहिए।" मुन्शी जी ने उत्तर दिया, "लड़की नहीं है कि नाक कट जायगी। जिसे गर्ज़ होगी पद्रह हज़ार लाकर गिन देगा। क्या सेंत का माँगता हूँ? पढ़ाया नहीं, है? आखिर क्या मै अपने लिए माँगता हूँ? मुझे भी तो बाटना है। जिसके लिए लिया था उसी के लिए वे भी देते है।" स्त्री भी

चुप हो जाती। सोचती, "ठीक तो कहते है, आख़िर यह कर्ज़ कहाँ से अदा होगा ?"

लड़का डिप्टी कलेक्टर हो गया, ठाट-बाट से रहने लगा। जितना पाता उससे सवागुना ख़र्च होता। मुन्शी जी की आशाओ पर मानो पानी फिरना आरंभ हुआ। सोचते थे, उसकी नौकरी लगते ही घर मालम-माल हो जायगा। यहाँ कुछ का कुछ नज़र आ रहा था। अब उन्हें सब से बड़ी चिन्ता अपने ऊपर के कर्ज़ की थी। उनके लिए बस एक ही उपाय रह गया, वह था लड़के की शादी। ज्यो-ज्यो सूद बढ़ता गया, त्यो-त्यो मुन्शी जी अपने लड़के की शादी का दहेज बढ़ाते गये। अत मे उन्होने निश्चय कर लिया कि बीस हज़ार से एक कौड़ी कम पर विवाह की बात न करेंगे, चाहे जो कुछ हो। मुन्शी जी नित्य अपने घर पर अकड़कर बैठते। सोचते, शादी की फरमाइश आती होगी। पहुँचते ही मुँहफट सुनाऊँगा। पर अब झूठ को भी उनके घर कोई झाँकने न आता। पर बेचारे निराश न होते। उन्हें निश्चय था कि उन का पुत्र कुआँरा न रहेगा।

मुन्शी जी का पुत्र बहुत दिनो बाद घर आया, और आया भी एकाएक; और वह भी दो-एक ही दिन के लिए। मुन्शी जी के यहाँ मित्रो का ताँता लग गया। सभी उनके पुत्र का आना सुनकर मिलने आते। बेचारे मुन्शी जी पुत्र से बातें करने को तरसते रहते। रात को बैठे भोजन करने। स्त्री ने बात छेडी। बोली, "रामू कल जानेवाला है। उसकी बातो का कुछ उत्तर दिया ?"

मुन्शी जी ने आश्चर्य से पूछा, "मुझ से उससे कब बात-चीत हुई ? जब से आया है इधर ही उधर मे है। कौन सी बात उसकी है जो उत्तर दूँ ?"

स्त्री ने कहा, "तुम से न कहा हो। संकोच करता हो। ख़ैर,

उसने एक लड़की पसन्द की है।" मुन्शी जी चुपचाप सुनते रहे। स्त्री कहने लगी, "कहता था, लड़की पढ़ी-लिखी है, सुन्दर है, अच्छे घराने की है, देखी-सुनी है।"

मुन्शी जी के लिए मानो ये व्यर्थ की बातें थीं। बोले, "और देंगे क्या ?"

मुन्शियाइन कहने लगीं, "मैंने पूछा था। बोला, लेन-देन की बात मैंने नहीं की, और न कर ही सकता हूँ। मैं तो 'सोशल रिफ़ार्म लीग' का मेम्बर हूँ। इसके बारे मे तो हम लोगो ने क़सम खा ली है। जो जिसकी तबीयत हो, दे, न दे। हमे लोग इक्कावन रुपये से अधिक देने पर विवश नही कर सकते।"

मुन्शी जी ने सिर हिलाकर व्यग से कहा, "अच्छा ! यह बात है ? यह मुझे नही मालूम थी। फिर मुझसे पूछने की ज़रूरत ? तुम जानो तुम्हारा लडका जाने।"

मुन्शी जी की पत्नी को यह व्यग अच्छा न लगा, पर उन्होने शांत करने की नीयत की से कहा, "आख़िर बिना तुम्हारी राय के शादी कैसे होगी ?"

मुन्शी जी ने दृढ़ होकर उत्तर दिया, "मेरी राय से होगी तो नही होगी। मै बीस हज़ार से कम न लूँगा।"

मुन्शियाइन अब अपने को न रोक सकी। बोली, "बीस-हज़ार बीस-जन्म मे न मिलेंगे, पर लड़का कुँआरा नही रहेगा। यह भी कोई बात है !"

मुन्शी जी आपे से बाहर होकर बोले, "तो करो न अपने मन की ! मै रोकता हूँ किसी को ! पर बतला देना लाला जी को कि बीस हज़ार का इन्तज़ाम कर रखें। ये रुपये लेकर मैंने रँड़ी नहीं नचाई थी।" यह कहकर वे चौके से उठकर खड़े हो गये।

अभी वे हाथ ही धो रहे थे कि उनका पुत्र सामने दीख पड़ा। मुन्शी जी ने पुकारा, "रामू !" रामू विनीत भाव से सिर नीचा

किये आ खड़ा हुआ। मुन्शी जी कुल्ली करते-करते बोले, "क्यों, सुनते है तुम अपनी शादी तय कर रहे हो ?"

रामू ने दबी ज़बान से कहा, "हॉ, मेरे एक मित्र की बहन है। वे मुझ पर दबाव डाल रहे हैं।"

मुन्शी जी ने खरका करते हुए कहा, "और तुमने मान लिया दबाव उनका ?"

रामू अपने कोट का बटन खोलते हुए बोला, "कैसे नही करता, मेरे कालिज के साथी है।"

मुन्शी जी ने उसकी ओर ऑख उठाकर क्षण भर देखा और बोले, "अच्छी बात है। मुझे कोई आपत्ति नही, पर वे बीस हज़ार देंगे ?"

रामू ने दृढ होकर उत्तर दिया, "लेन-देन की कोई बात नहीं हो सकती। और न वे इतनी रकम दे ही सकते हैं।"

"तो फिर तुम देना अपनी जेब से। कुछ पता है बीस हज़ार का कर्ज़ अदा करना है। ये तुम्हारी पढ़ाई के हैं, कुल सूद लेकर।"

रामू ने सक्षेप मे उत्तर दिया, "दूँगा।"

"दूँगा !" मुन्शी जी ने व्यग करते हुए कहा, "कहाँ से दोगे ! इतनी तन्ख़ाह मे अकेले के ख़र्च को तो अँटता नही।"

रामू उत्तेजित हो उठा पर विनय से बोला, "ख़र्च कम कर देंगे! मोटर निकाल देंगे, नौकर कम कर देंगे, खद्दर पहनेंगे, क्लब की मेम्बरी छोड़ देंगे।"

"हॉ ! यह बात ! तो यह भी याद रखो, उसी दिन सरकारी नौकरी से छुट्टी भी पा जाओगे।" मुन्शी जी कह बैठे।

रामू झल्लाकर उत्तर दे बैठा, "कालिज की नौकरी कर लेंगे।"

"कमेटी के मेम्बरो की मिज़ाज-पुर्सी कर सकोगे ?" मुन्शी

जी ने व्यंग से पूछा।

"न कर सकूँगा, इस्तीफा दे दूँगा, साहित्य-सेवा करके काम चलाऊँगा।" रामू ने लाचार होकर कहा।

"साहित्य-सेवा करोगे! मारे-मारे फिरोगे।" मुन्शी जी ने अंतिम आघात समझकर उत्तर दिया।

रामू अपने सिद्धान्त पर अटल था, बोला, "कुछ करूँगा किसी तरह पेट भरूँगा।"

"और बीस हजार अदा कर सकोगे?" मुन्शी जी ने मानो पहाड़ दे मारा था।

रामू ने उङ्गली पर मानो उसे रोक लिया। बोला, "हाँ अदा करूँगा, जिन्दगी भर मे अदा करूँगा।"

मुन्शी जी सहज मे जान छोड़नेवाले न थे, कह बैठे, "और बाल-बच्चो को कहाँ से खिलाओगे-पिलाओगे, पढाओगे-लिखाओगे?"

मुन्शी जी का यह अतिम बाण था, पर कुठाँव लगा।

उत्तर मिला, "जहाँ से आपने किया है।" मानो मुँह पर तमाचा लग गया। मुन्शी जी तिलमिला कर चुप हो गये।

डिप्टी कलेक्टर लड़का दूसरे दिन अपनी नौकरी पर चला गया। मुन्शी जी ने पेंशन लेकर घर से इस्तीफा दे दिया। उनकी स्त्री अब अपने पुत्र के साथ रहने चली गई। वे अयोध्या मे राम भजन करने चले गये।

पता नहीं मुन्शी जी के पुत्र की शादी हुई या नही पर हमे विश्वास है कि अवश्य हो गई होगी। यो तो मुन्शी जी के नित्य दर्शन होते है, पर उनसे पूछने की हिम्मत नही होती। वे अब सांसारिक प्राणी नहीं रहे। ऐसे प्रश्नो पर अब वे उपेक्षा भरी हँसी हँस देते है।

बेकारी का भूत

मँहगू मल्लाह अपनी मचिया पर बैठा नारियल गुड़गुड़ा रहा था। उसकी मल्लाहिन घर की देहली पर बैठी शून्य दृष्टि से गंगा-तट की ओर देख रही थी। बच्चे धूप मे पड़ोसिन के लड़कों से चबैना बँटा रहे थे। जाडे के दिन थे। प्रथम प्रहर का सूर्य शरीर मे गरमाहट पैदा कर रहा था। मल्लाहिन ने शान्ति भग करते हुए पूछा, "आखिर बैठे ही रहोगे कि कुछ काम-धाम देखोगे? तीन दिन तो हुए माँग-जाँच कर काम चला रही हूँ। मोदी कहता था, 'आज हिसाब ज़रूर चुकाना।' कुछ ख़बर भी है, डेढ़ रुपये देने हैं?"

मँहगू की मानो निद्रा भंग हुई। बोला, "घबड़ा मत, जाता हूँ। ईश्वर ने मुँह दिया है तो खाना ज़रूर देगा।" यह वैज्ञानिक तर्क मल्लाहिन को न जँचा। वह त्योरियाँ बदलकर खडी हो गई और लगी मुँह बनाकर कहने, "अच्छा बैठे रहो। ईश्वर आकर दे जायगा! खाना! आज ही संध्या को तो मालूम हो जायगा।"

मँहगू ने मानो कुछ सुना ही नहीं, और वह भी गँवारिन की क्या सुनता। वह ठहरा सत्संगी आदमी, साधु-महात्माओ का साथ करनेवाला, गाँजे का दम लगानेवाला, और रामनामियों का भक्त। उसने अपनी जली चिलम उलट दी और उसे फिर भरने चला। आग तो अँगेठी मे छिपी थी पर तमाकू ढूँढने उसे उठना पड़ा। उसने उठकर आले पर देखा। वहाँ नहीं था। जाकर हँड़िए में हाथ डाला तो कुछ हाथ न लगा, उसे बाहर

लाकर धूप में खुरचने लगा। ख़ैर, कुछ निकल आई। एक चिलम से कुछ कम ही थी। कोई हर्ज नही। उसने चिलम पर 'आगी' रक्खी और फिर मचिया खिसका कर सुलगाने लगा। जाने आग कम थी या तमाकू या दोनो; पर चिलम जमी नहीं। मँहगू ने नारियल को दिवाल से टिका दिया और सूरज की ओर पीठ कर सोचने लगा, "राम की इच्छा है, कई दिन से कोई असामी हाथ नही आता। यो तो बहुतेरे आते रहते हैं। जाने कहाँ के दरिद्र आते है। चार पैसे से अधिक मुँह से निकालते ही नही, मानो भीख दे रहे हों। अपने से यह न होगा कि चार पैसे पर दौड़ते फिरें। इतना तो अपने राम एक 'दम' मे उड़ा देते हैं। मोदी के डेढ़ रुपये देने हैं, दमड़ी की माँ उससे भी ज्यादा नाक मे दम कर देगी"—इस विचार से उसके माथे पर बल पड़ गया।

मँहगू धीरे से उठा और तट पर बँधी अपनी नाव की ओर चला। मल्लाहिन देखकर कुछ प्रसन्न हुई। उसने लड़के को अपने पास बुलाया और उसकी पीठ पर प्रेम से हाथ फेरते हुए नाव की ओर देखने लगी। लड़का माता को प्रसन्न जानकर गुड़ माँगने लगा। मल्लाहिन ने उसे गोद में उठा लिया और उसे बहलाने लगी। मल्लाह अपनी नाव के पास पहुँच रहा था। उधर से दो पार जानेवाले देहाती पहुँचे। मल्लाहिन ने देखा, दोनो मँहगू से पूछताछ कर रहे है। वह प्रसन्नचित हो बच्चे को गुड़ देने भीतर चली गई।

दोपहर होने मे अब देर नहीं है। मँहगू अपनी नाव पर बैठा कुछ सोच रहा है। वह सोचता है, "डेढ़ रुपये मोदी को देने हैं। चार आने पड़ोसिन से लेकर उस दिन बाज़ार किया था; कुल हुए पौने दो रुपये। दो रुपये मिलें तो काम चले। कम से कम दो-चार आने तो अपने पास भी चाहिए। मल्लाहिन को पौने दो

पये दे दूँगा, वह जान छोड़ देगी। चार आने पहले ही लूँगा। उस से कह दूँगा कि पौने दो ही मिले हैं। फिर दो। एक दिन तो दम-दरूद' के लिए उसकी हीं-हीं न करने पड़ेगी। दो से ज्यादा मिले तो फिर क्या कहना। पर दो से कम मे तो काम नहीं चलेगा। और फिर इससे कम पर क्या, डाँड हाथ मे लेना। दो-चार आने पर मँहगू नहीं दौड़ने वाला। इतना तो मैने कितनी बार साधुओं के नशा-पानी में खर्च कर दिया है।"

सूर्यदेव अपने चरम-शिखर से नीचे उतर रहे थे। तट पर के पीपल की परछाई पच्छिम से पूरब ओर बढ़ने लगी थी।

कितने राही आये और दूसरे घाट चले गये। मँहगू उन्हे पार पहुँचाने पर राजी न हुआ। किसी ने उतराई मे चार पैसे सुनाये, किसी ने पाँच पैसे। उस पार के देहाती घाट पर नाव न देख दूसरे घाट का रास्ता पकड़ते। मँहगू उठकर अपनी नाव का पानी उलचने लगा। वह पानी उलचता जाता और बीच-बीच मे सड़क की ओर देखता जाता। सामने खाकी वस्त्र पहने दो व्यक्ति आ रहे थे। उनके सिर पर खाकी टोप भी था। धीरे-धीरे वे पास आगये। मँहगू पानी उलचकर उदासीन भाव से अपनी नाव की 'किलवारी' पकडकर बैठ गया। मानो उसे कोई काम ही नहीं करना था।

दोनों व्यक्ति सडक छोड़ कर घाट की ओर मुड़े। एक के कंधे पर दो नली बंदूक थी, कमर मे कारतूसो का परतला। दूसरे के हाथ मे झोला और पीठ पर खोल के भीतर कोई चीज – शायद वह रायफल थी। दोनो घाट पर पहुँचे। एक ने पुकारा, "मल्लाह, शिकार खेलाने चलता है?" मँहगू ने मानो सुना ही नहीं। दूसरे ने पुकारा, "अजी ओ नाव वाले, कहीं चलेगा?" मँहगू ने अब मानो सुन लिया था। मुँह फेरकर अन्यमनस्क होकर बोला, "क्यो नहीं चलेंगे, कहाँ चलिएगा?" पहले शिकारी ने पूछा,

"यहाँ कुछ शिकार मिलता है ?" मँहगू ने गंगा के विस्तृत जल-राशि पर एक बार दृष्टिपात करते हुए कहा, "क्यो नही मिलता, आप किस चीज़ का शिकार करेंगे ।"

दूसरा शिकारी अभी तक चारों ओर ग़ौर से देख रहा था। उसने घड़ी पर दृष्टि डालते हुए कहा, "मिस्टर पी, दो बजने मे दो-तीन मिनट है । हम लोग अधिक से अधिक तीन घंटे का 'ट्रिप' (सैरं) कर सकते हैं । मुझे तो यहाँ कुछ शिकार दिखाई नही पड़ता है । ख़ैर, चलिए ज़रा हवा ही खालेंगे ।

मिस्टर पी अपनी सिगरेट जलाने मे लगे थे । बार-बार सलाई जलाते किन्तु बार-बार वह हवा के झोके से बुझ जाती । आख़िर टोप उतार कर उसकी आड़ मे सिगरेट जलाकर वे मित्र की ओर फिरकर कहने लगे, "कहिए ! क्या कहते है ?" उनके मित्र उनकी ओर से ध्यान हटाकर मँहगू के निकट पहुँचे और उससे कहा, "अजी चलना हो तो चलो, दो-एक घंटे घुमा लाओ । दो तो बज ही गये । दो-ढ़ाई घंटे घूम-फिर लें । अगर कुछ मिला तो पीट लेंगे, नही तो यो ही क्यो लौटें ।"

मँहगू नाव से उतर आया और पास आकर धीरे से बोला, "तो क्या मिलेगा ?"

प्रथम व्यक्ति ने पूछा, "बोलो, तुम्ही कहो, क्या लोगे ?"

मँहगू ने कुछ हिसाब बैठाते हुए कहा, "मै तो ढाई रुपये लूँगा ।"

दूसरा व्यक्ति ठहठहाकर हँस पड़ा ।

मिस्टर पी ने बन्दूक इस कन्धे से उस कन्धे पर रखते हुए कहा, "अजी ठीक-ठीक कहो, क्या बे सिर-पैर की माँगते हो ।"

महँगू कुछ सिटपिटा गया । बोला, "चार आना कम दे दीजिए, आप की इच्छा हो दो आने और कम दीजिए ।" यह कहकर उसने घर की ओर देखा । उसकी स्त्री दरवाज़े पर बैठी

उसकी ओर देख रही थी।

दोनो शिकारी यह सुनकर चुप हो गये। फिर दोनो ने कुछ आपस मे गिट-पिट बातें की। थे तो दोनो हिन्दुस्तानी पर उनकी भाषा देसी न थी। मिस्टर पी महँगू को पास बुलाकर कहने लगे, "देखो, अगर तुम चलना चाहो तो ढाई-तीन घन्टे घुमा लाने का तुम्हे एक रुपया मिल जायगा।" यह कह, वे अपने मित्र की ओर देखने लगे। उनके मित्र की मुद्रा सम्मति सूचक थी। महँगू नीचे भूमि की ओर देखता हुआ कुछ सोच रहा था। थोड़ी देर वह चुप-चाप कुछ हिसाब बैठाता रहा। फिर एकाएक दृढ़ होकर बोला, "नही साहब, कहाँ ढाई रुपये, कहाँ एक ! अच्छा आप इच्छा हो तो जाइए दो रुपये दे दीजिये।" वह आशा भरी आँखो से दोनो शिकारियों की ओर देखने लगा। मिस्टर पी और उनके मित्र फिर कुछ मंत्रणा करने लगे ! उनकी भाषा महँगू समझ न सका, पर उसका साराश मिस्टर पी के मित्र ने उसे बतलाया, कि अगर चलना हो तो हम लोग डेढ़ रुपये दे सकते है। मँहगू ने गभीरता से सिर हिला दिया, कि नही यह नही हो सकता।

मित्र ने मिस्टर पी से कुछ कहा। मिस्टर पी ने क्षण भर कुछ सोच कर एकाएक मानो निश्चय पर पहुँच कर कहा, "देखो, हम चार आने और दे देंगे। अब आ गये है तो थोड़ा घूम ले, वरना डेढ़ रुपये भी बहुत ज्यादा है। चलना हो तो चलो जल्दी। ढाई बज रहे हैं।" यह कहकर वे ऐसे तैयार हो गये, मानो अब रुकेंगे नही, चाहे नाव की ओर बढे या सड़क की ओर। मँहगू अपनी नाव की ओर बढ़ा। मित्रो ने सोचा उसे तैयार करने गया है। ये लोग नई-नई सिगरेट जलाने लगे। सिगरेट जली। दोनो ने नाव की ओर आश्चर्य्य से देखा, मँहगू जाकर उस पर चुपचाप बैठ गया है !

मिस्टर पी ने झल्लाहट से अवेश मे कहा, "अजीब आदमी

हो तुम, डैम! अगर नहीं जाना है तो साफ-साफ कहता क्यो नही ?"

मॅहगू ने लड़खड़ाते हुए लहजे मे उत्तर दिया, "नही साहब, इतने मे तो नहीं होगा। दो से कम मे मेरा पेट नही भरेगा।" अब दोनों मित्र बिलकुल न रुके। दोनो आपस मे कुछ बड़बड़ाते हुए लौट पड़े। देखते-देखते वे आँख से ओझल हो गये। मॅहगू नाव की 'किलवारी' पकड़ कर मानो गंगा की लहरें गिनने लगा।

मल्लाहिन मकान से यह सब देख रही थी। दूर से पता नहीं चला उसके चेहरे से क्या भाव प्रगट होते थे, पर इतना अवश्य दिखाई पड़ा कि उसने क्रोध और निराशा के आवेश मे एक बार अपनी नाव की ओर हाथ बढ़ाकर कुछ अग-भगी की थी। दोनो शिकारी चले गये। सूर्यदेव भी अस्ताचल को जा रहे थे। घाट पर अब कोई न था। पीपल की प्राची दिशा तक फैली हुई छाया की पतली रेखा अब बढ़कर मानो अंधकार के रूप मे चारो ओर फैल रही थी। मॅहगू अपनी नाव पर निश्चल बैठा था। उसके बाहर निस्तब्धता विराज रही थी, पर उसके मन में क्या उथल पुथल हो रहा था, यह वही जाने। उसने एक बार घर की ओर देखा। अंधकार के आलोक में उसका घर दिखाई नही पड़ा। वह नाव से उठना ही चाहता था कि उसे अपनी मल्लाहिन की बोली सुनाई पड़ी।

"घर चलोगे कि बैठे-बैठे लहरें गिना करोगे। सारा दिन गॅवाया अब क्या रात भर भी यहीं बैठने का विचार है ?"

मॅहगू ने अपराधी की दीनता से सफाई देते हुए कहा, "तो मै क्या करता ? जब सौदा ही नही पटता तो मै क्या बरबस चढ़ा लूँ ? लोग तो मुफ्त मे काम कराना चाहते हैं।"

मल्लाहिन ने उपेक्षा की ध्वनि में कहा, "इतने आये, तुमसे भाड़ा ही नहीं पटता। क्या सभी मुफ्त मे जाना चाहते थे। मै

बैठी बैठी सब देख रही थी।"

मँहगू कुछ साहस करके बोला, "अच्छा तू ही बता, मैंने क्या मार कर भगा दिया था? लोग उतराई चार-पाँच पैसे से अधिक नहीं देना चाहते। उन्हें पैसा तो बड़ा प्यारा है, हमारी मेहनत हमें प्यारी नहीं! इस 'तिरखे' में डाँड लगाकर उस पार जाने में दाँतों पसीना आ जाता है।"

मल्लाहिन को मानो सफाई कुछ जँची नहीं। उसने मानो अपराध का प्रायश्चित्त करने के लिए कहा, "और वे दो साहब जो लौट गये क्या वे भी चार ही पैसे दे रहे थे?" मँहगू को विश्वास तो था कि उसकी मल्लाहिन घर पर बैठे-बैठे यह नहीं सुन सकती कि उसने क्या माँगा था, और क्या मिल रहा था। फिर भी उसने सचमुच ही कहा, "मैंने तो दो ही रुपये माँगे थे।

"और वे देते क्या थे?" उसकी स्त्री ने तुरंत पूछा।

मँहगू को क्रोध चढ़ आया। वह जोर से बोल उठा, "देते, क्या थे? रो-गाकर पौने दो! चार आने हमारे और देने में उनके प्राण निकल रहे थे।"

मल्लाहिन को मानो अब निश्चय हो गया था कि अपराध मँहगू का ही था। उसने ऐंठकर कहा, "और पौने दो रुपये कुछ कम थे? कम से कम आज का तो सारा खर्च निकल आता।" स्त्री का सिर हिलाना मँहगू अँधेरे में न देख सका। पर उसने क्रोध के आवेश में कहा, "तू बड़ी चतुर है न। पौने दो रुपये तो तू ही ऐंठ लेती और मैं क्या मुफ्त सर्दी में जान देता? मैंने चार ही आने तो अपने लिए माँगे थे। उसे भी उन्हें देने में रुलाई आ रही थी। उन्हें चार आने प्यारे हैं, तो रहें। मुझे मुफ्त में पसीना बहाना नहीं आता।"

स्त्री अब हार गई थी। उसने निराशा, दुःख और दया भरे

शब्दो मे पति को धिक्कारा, "यह सब कुछ नही, तुम पर बेकारी का भूत सवार है।"

मँहगू खड़ा यही सोच रहा था, "मैने क्या अपराध किया। आखिर दो रुपये से कम मे मेरा कैसे हिसाब बैठता।"

उसे निश्चय हो गया था कि उसकी स्त्री उसे व्यर्थ खरी-खोटी सुना रही थी।

कवि जी की रसिकता

कवि जी की रसिकता का पता लड़कों ने तभी पा लिया था, जब वे कालेज के कवि-सम्मेलन में पधारे थे। और उनकी कविता का तो क्या कहना! श्रोताओं से अधिक तो वे स्वयं उसका आनंद लेते थे। कालेज के लड़के ऐसे दिलचस्प कवि को कब छोड़ने वाले। यारों ने चाय-पार्टी दी, कविता सुनी, उसकी व्याख्या सुनी, और उस पर हजारों आचार्यों और प्रोफेसरों की सम्मति का पुलिन्दा देखा। इस प्रकार जब घनिष्ठता बढ़ी तो वे कवि के हृदय के कन्दराओं में छिपी अनेक मौलिक भावनाओं के अतिरिक्त उनकी निजी कमजोरियों का भी दर्शन कर पाये। अब क्या था। कवि जी यों ही मनोरंजन की सामग्री थे, अब विनोद के उपकरण भी बन गये।

कवि जी विधुर हैं या अविवाहित अथवा पत्नी-परित्यक्त या परित्यक्त-पत्नी—हम नहीं जानते। परन्तु कालेज में रहते हुए हमने ऐसा अनुभव किया कि कवि जी विवाह के इच्छुक हैं—परिणय के प्रेमी हैं।

सुना था कि यदि कोई पढ़ी-लिखी सुशिक्षित सभ्य विदुषी महिला हो तो वे सहर्ष उसे स्वीकार कर सकते हैं—चाहे वह हरिजन कन्या ही क्यों न हो।

क्लास में मिस प्रभा बहुत चुपचाप रहती। जब प्रोफेसर साहब बिहारी के दोहे की व्याख्या करते हुए शर्माने लगते

मिस प्रभा जैसे गूँगी-बहरी, निर्विचार बनी बैठी रहती। लड़के उन्हें देखते—इस आशा से कि शायद बिहारी के दोहो का प्रभाव मिस प्रभा पर पड़ा हो। पर वहाँ तो चिकना घड़ा था—ज्यो-का-त्यो, मानो पानी ही नही देखा। लड़के निराश होकर मिस प्रभा को, 'बनी हुई' कहते और उसका भण्डाफोड़ करने की क़सम खाते। आख़िर एक दिन किसी को सूझ ही गयी।

कवि जी को पत्र मिला। लिखा था, "हमारे कालेज की एक कुमारी छात्रा महाशया आप की कविता पर लट्टू हैं। व्याख्या सुनती हैं तो आपे से बाहर हो जाती है। मैने उनसे बातें की तो मुझे ऐसा स्पष्ट हो गया कि वे आप ही जैसे कवि से विवाह करने की इच्छा रखती हैं। यदि आप उनसे मिल सकें तो कदाचित आपको सफलता मिले.. ...।"

अब क्या था? कवि जी की ख़ुशी का ठिकाना नही! किसी तरह दो घण्टे काटे। तुरन्त अपनी पुस्तकों का बण्डल बनाकर डाक से मिस साहबा को भेजा—दो-एक दिन बाद पुस्तको के उपहार के लिए 'धन्यवाद' लिख कर आ पहुँचा। कुछ ही दिन बाद कवि जी मिस साहबा से मिलने जा पहुँचे। ताँगे से उनके उतरते ही मिस के बूढ़े पिता मिस्टर मुकर्जी ने देखा कि एक व्यक्ति ताँगे से उतरा है और ताँगे वाला एक डाली उतार रहा है। मिस्टर मुकर्जी अपने बरामदे मे बैठे छुट्टी के दिन बिता रहे थे। यह दृश्य देख उन्हें अपने 'सर्विस' के दिनो का स्मरण हो आया जब उनके घर डालियाँ पहुँचती थी। उन्होने सोचा कोई पुराना भक्त अपने 'रिटायर्ड' अफसर को अब भी नही भूला है। वे स्वागत के लिए खड़े हो गये। कवि जी ने बरामदे के ज़ीने पर पैर रखते हुए पूछा—"क्या यही मिस्टर मुकर्जी का बँगला है?"

"हाँ-हाँ, आइए! आइए!"—वृद्ध मुकर्जी ने हाथ बढ़ाते हुए स्वागत किया—"आपका शुभ नाम पूछ सकता हूँ?"

"मेरा—? मैं कवि हूँ। मुझे लोग 'रसिक जी' कहते हैं! मैंने कुछ पुस्तकें भेजी थीं—"

"हाँ-हाँ—ठीक, आप ही ने भेजी थी?" मुकर्जी महाशय ने कुर्सी बढ़ा दी।

कवि जी बैठ गये। डाली—फूलो-फलों और मिठाइयों से भरी हुई सामने रखी हुई थी। मुकर्जी महोदय उसे देख प्रसन्न हो रहे थे। कहने लगे, "इसकी क्या जरूरत थी—"

कवि जी बोले, "आप की सेवा के लिए यह कुछ भी नही है?"

मुकर्जी ने पुकारा—"प्रभा!"

मिस प्रभा बग़ल के कमरे मे बैठी परीक्षा की तैयारियाँ कर रही थी। कमरे से कुछ धीमी आवाज़ आई जैसे किसी ने यो ही उत्तर दिया हो और वह व्यस्त हो।

मुकर्जी महाशय ने पुकारा, "बेटी, इधर तो आना!"

प्रभा के उठने से कुर्सी की खड़खड़ाहट हुई। कवि जी प्रतीक्षा के शिकार हो उठे। क्षण भर मे बग़ल के कमरे का पर्दा हटा। एक साधारण सुन्दरी, कुमारी, अपने ढङ्ग से, कमरे से निकली। एक अपरिचित व्यक्ति को देख उसने अपने अस्त-व्यस्त अंचल को ठीक किया और सामने जा खड़ी हुई। कवि जी उसकी तरफ़ देख रहे थे और वह पिता की ओर!

पिता ने कहा, "यही महाशय हैं जिन्होने पुस्तकें भेजी थी।" और कवि जी की ओर देखकर वे बोले, "यह मेरी एक मात्र कन्या प्रभा है—यह बी० ए० में पढ़ती है। इसने हिन्दी लिया है।"

कवि जी खिल उठे; प्रभा लज्जा से कुछ लाल हो उठी और मुकर्जी डाली की ओर देखकर बोले, "उसे नौकर से लिवा जा बेटी—आपके लिए चाय-वाय का प्रबन्ध कर।"

चाय आई, डाली भीतर पहुँची, कवि जी प्रसन्न हुए और मिस्टर मुकर्जी अतिथि के आवभगत मे लगे।

चाय पी गई, पान के कितने बीड़े चबाये गये—जाने कहाँ-कहाँ की कितनी बातें हुई, पर कवि जी जहाँ के तहाँ बैठे रहे। उनके लिए समय की गति मानो बन्द थी। अन्त मे भोजन का समय आया। मुकर्जी महाशय ने भोजन के लिए कहा। कवि जी को कोई एतराज़ न था। कवि जी को खिलाने का भार प्रभा पर पड़ा। भोजन की समाप्ति तक कवि जी ने पता लगा लिया कि मिस प्रभा को हिन्दी साहित्य का ज्ञान है—कवियो के नाम जानती हैं, हिन्दी का उत्पत्तिकाल जानती है, आधुनिक हिन्दी की दशा जानती हैं, मौलिकता की कमी जानती है—और हिन्दी की दशा सुधारने के पक्ष मे है। इससे अधिक कवि जी को जानने का अवसर न मिला पर वे निश्चिन्त थे कि उनकी इच्छा पूरी होगी।

भोजन हो गया। मिस्टर मुकर्जी कवि जी का मनोरंजन करने लगे। इधर-उधर की बातें आरम्भ हुई, "आप विवाहित हैं? आपकी क्या स्थिति है? आप क्या करते है?"—इत्यादि प्रश्नो का उत्तर कवि जी ने संतोषजनक दिया।

कवि जी को विश्वास हो गया कि प्रभा उनकी भावी भार्या है। वे अब अधिक व्यग्र नहीं थे। परन्तु मन मे एक शका थी जिसका वे 'हाँ' कराके निवारण कर लेना चाहते थे। पर ऐसी बातें इस तरह पूछना ठीक नही। कवि जी ने तरकीब सोच ली। एक घण्टे की छुट्टी ले वे शहर चले।

तीसरे पहर कवि जी को लिए हुए एक मोटर-टैक्सी मिस्टर मुकर्जी के बँगले में दाखिल हुई। यह तै पाई कि सैर के लिए चला जाय। कवि जी का आग्रह न तो मुकर्जी महाशय टाल सके और न पिता का आग्रह उनकी कन्या टाल सकी। अत मे पिता-पुत्री को ले कवि जी मोटर पर सैर करने निकले।

घूमते-घामते सन्ध्या हो गई पर कवि जी को कोई ऐसा स्थान न मिला, ऐसा अवसर न मिला कि वे पिता या पुत्री से विवाह की बातचीत चलाते। अंत में संध्या समय चाँद के निकलते-निकलते कवि जी नदीतट की ओर घूम पड़े। पूर्णिमा का चाँद अपनी पूरी प्रभा के साथ निकल रहा था—उसके अनुराग की लालिमा दिशाओं को रंजित करती हुई कवि जी की रसिकता को रङ्ग रही थी। घाट पर पहुँचते ही उन्होंने प्रस्ताव किया—"आइए मुकर्जी महोदय, ज़रा नाव पर सैर कर आवें—क्यों मिस प्रभा?"

उन्होंने बड़े प्रेम और उल्लास से प्रभा की ओर प्रश्नात्मक भूमिका के उपरांत देखा था। मिस प्रभा के कपोलों पर की लालिमा निकलते हुए चाँद की लालिमा में मिल रही थी।

नाव आई—मुकर्जी मिस प्रभा के साथ अतिथि का आग्रह न टाल सके। घाट से नाव धीरे-धीरे विदा हुई। अब वह नदी के प्रशांत वक्षस्थल पर गुदगुदी की भाँति रेंगने लगी। इसी के साथ कवि जी के हृदय में किलोलें उठने लगीं। मिस प्रभा को लक्ष्य कर और मुकर्जी महोदय को सम्बोधन कर अपनी कविता सुनाने लगे।

मुकर्जी महोदय सुनते थे—मिस प्रभा कुछ समझने की चेष्टा कर रही थी। कवि जी समझाने के लिए अनेक प्रकार के भावभंगी कर रहे थे और नाव का कर्ण-धार अपने डाँड लगाए जा रहा था। नाव काशी के घाटों की रमणीय शोभा दिखाती हुई आगे बढ़ रही थी। कवि जी की कविता चल रही थी—उनकी तन्मयता बढ़ रही थी। मुकर्जी कुछ निश्चिन्त से सुन रहे थे, मिस प्रभा कुछ वाचाल हो रही थीं, कुछ साहित्यिक जिज्ञासा का शिकार हो रही थीं। कवि अपना अवसर पाकर अपनी कविता, अपने हृदय के अव्यक्त भाव उंडेल देने के लिए आतुर

हो रहा था। जब ऐसी परिस्थिति हो, तो कवि क्यो न अपने को भूल जाय !

चाँद काफी ऊपर चढ़ चुका था, कवि के ऊपर कविता का नशा भी काफी चढ़ रहा था। अब वह श्रृङ्गार मे विचरने लगे थे। दोहे चल रहे थे, व्याख्या हो रही थी। मिस प्रभा के कपोलो पर लाली चढ़ती-उतरती थी। पर मिस्टर मुकर्जी खिन्न से हो रहे थे। कवि अपनी संतुष्टि की सीमा के पार जा रहा था।

नाव लौटने लगी उसी के साथ, अवसर की अवधि घाट पर लगने वाली थी। कवि जी अब एकाएक व्यावहारिक बन गये—उनका सीधा सा प्रश्न हुआ—"हाँ, तो महाशय, आपने मिस प्रभा के विषय मे क्या निश्चय किया ?" मुकर्जी महाशय चौंक कर बोले, "कैसी बात ?"

"यही उनके विवाह के विषय मे।"

"देखा जायगा !"

"अब देखने के लिए समय कहाँ है—मैं तो उसमे विलम्ब नहीं करना चाहता !" कवि जी बोले।

मिस्टर मुकर्जी कवि जी का रहस्यवाद न समझ सके, बोले तो कुछ नहीं—केवल खिन्न !

कवि का साहस बढ़ा। उन्होने मिस प्रभा को सम्बोधन कर पूछा, "कहिए, आप चुप क्यो हैं ? क्या आप अभी विवाह टालना चाहती हैं ?"

प्रभा क्या उत्तर देती ! वह कुछ झेंप सी रही थी। कवि ने दृढ़ होकर कहा—"मुकर्जी महाशय ! जब हम दोनों राजी हैं—तो अब शादी टालना ठीक नहीं ! आप मुझ-सा अच्छा दामाद न पावेंगे।"

नाव घाट पर लगने ही वाली थी। मुकर्जी का मोह छूटा।

अब वे अपने को सँभाल न सके। सर्विस जीवन की चिर अभ्यस्त पुलीस की शब्दावली का प्रयोग कर उन्होने कवि को गरदनियाँ देते हुए कहा, "क्या बकता है? साला! बदमाश! गुण्डा! क्या बकता है? उतर नाव से!"

कवि अपने को सँभालता हुआ, मिस प्रभा की तरफ न्याय की आशा से देखने लगा। पुत्री अपने पिता के आचरण का समर्थन करती हुई हतबुद्धि खड़ी थी! कवि की आँखो के सामने निराशा का अंधकार छा गया। वह धक्के को न सँभाल कर घाट के जीने पर लड़खड़ाकर बैठ गया। मुकर्जी अपनी पुत्री का हाथ पकड़े कवि को अपभ्रंश, देशी, अङ्गरेजी और बङ्गला की शब्दावली मे अनेक दुर्वचन कहते हुए घर की ओर लपके।

कवि जी जब सँभलकर उठे तो उन्हे अपनी मूर्खता पर क्रोध आ रहा था, पर वे अब किस पर अपना क्रोध उतारते। उन्हे इसी मे सतोष हुआ कि आस-पास कोई परिचित व्यक्ति उन्हे देख नही रहा था!

विनोद

जाड़े की संध्या थी। शायद बड़े दिन की छुट्टियों के दिन थे। प्रयाग स्टेशन पर तांगा आकर रुका। उस पर से एक युवती और एक युवक उतरे। कुली असबाब उतारने लगे। युवती और युवक दोनो एक ओर खड़े हो गये। बनारस की गाड़ी आने में अब अधिक देर न थी। युवती से युवक ने कुछ कहा और वह कुलियो के साथ प्लेटफार्म पर चला। युवती टिकट लेने पहुँची। खिडकी खाली थी। टिकट बाबू आँखो पर बिल्लौरी चश्मा लगाये हिसाब मिला रहा था। उसने रजिस्टर एक ओर रख, खिड़की की ओर आँखें उठाईं, देखा, तो एक सुन्दरी खड़ी टिकट माँग रही है। बूढ़े क्लर्क ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

युवती ने गम्भीरता से कहा, 'इन्टर, बनारस कैंट।" क्लर्क को मानो काठ मार गया हो। वह एकटक उसकी ओर देख रहा था। युवती ने मुस्करा कर दो रुपये 'काउण्टर' पर फेंक दिये। रुपये झनझना कर चुप हो गये।

टिकट बाबू अपनी ऐनक नाक पर सीधा कर रहा थां। उसने पूछा—"इन्टर? बनारस कैन्ट?", और वह रुपये उठाकर सँभालने लगा। टिकट न निकाल कर वह कुछ सोचने लगा और लगा पूछने, "आप कहाँ जायँगी?"

युवती ने डपट कर कहा, "बनारस कैन्ट।"

"बनारस कैन्ट", बाबू ने दोहराया। "आप अकेली ही जा रही हैं?" उसने उत्सुकता से पूछा।

युवती ने मुँह विचका कर, मुस्कराते हुए कहा, "इससे आप से मतलब ? आप टिकट बनाइये।"

बाबू लज्जित हो गया। वह टिकट तय्यार करने लगा। उसके हाथ मानो काम ही न देते थे। उसने टिकट छाप कर उसे हाथ में ले, युवती की ओर देखा और वृद्धों की भाँति पूछने लगा, "क्यों बेटी! आप अकेली जा रही हैं ? आप अकेली रेल से सफर करेंगी—एक दम अकेली!" और वह आँखें फाड कर उसकी ओर देख रहा था।

बाबू खिड़की के भीतर एकटक खडा देख रहा था; युवती बाहर खड़ी मुस्करा रही थी।

इसी बीच वह युवक आ पहुँचा। उसने पहुँचते ही कहा, "बनारस कैंट—इन्टर!", और उसने दो रुपये फेंक दिये। पत्थर की 'काउण्टर' पर वे रुपये गिर कर झनझना उठे। बाबू का ध्यान टूटा। उसने टिकट युवती के हाथों मे दे युवक के रुपये सँभाले। युवक ने युवती की ओर सम्बोधन कर पूछा, "माफ कीजियेगा—क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप किस गाड़ी से सफ़र करेंगी ?"

युवती ने ज़रा झेंप कर कहा, "नही कोई बात नहीं, मैं तो बनारस जाऊँगी। आप किधर जा रहे हैं ?"

युवक ने अन्यमनस्क होकर कहा, 'यों ही बनारस तक मुझे भी जाना है।"

टिकट बाबू अपना काम छोड उनकी बातें सुनने मे लगा था। युवक ने डाँट कर कहा, "टिकट प्लीज़, हरी अप्।"

बाबू चौंक पडा, उसने घबराहट मे बिना छापे ही टिकट दे दिया।

युवक ने मुस्कराकर कहा "तारीख लगाइये, जनाब ! आप सो रहे हैं क्या ?"

टिकट बाबू ने टिकट छाप कर युवक के हाथ मे दिया। युवक युवती प्लेटफार्म की ओर चले।

युवक अपना 'अटेची केस' लेकर आगे बढ़ा। युवती ने इंटर मे अपना असबाब रखवाया और कुली को पैसे दे, एक बेञ्च पर बैठ गई। युवक ने गाड़ी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक चक्कर मारा—मानो उसे कही जगह न मिली। फिर वह उसी डिब्बे के सामने आकर स्थान ढूँढ़ने लगा। गार्ड ने सीटी दी। युवक डिब्बे मे दाख़िल हुआ। ट्रेन प्रयाग स्टेशन से बाहर हुई।

कुछ देर तक युवक खड़ा दरवाजे से बाहर देखता रहा। ट्रेन गङ्गा के पुल पर पहुँच घड़-घड शब्द करने लगी। पुल के कबूतर दूर से घूम-फिर कर बसेरा लेने के लिए आ रहे थे। वे ट्रेन के निकल जाने की प्रतीक्षा मे मँडराने लगे। युवक ने अब बैठना चाहा। कम्पार्टमेन्ट मे आँखे दौड़ाईं तो सारे बेञ्च भरे थे। केवल एक बेञ्च पर एक युवती बैठी थी। सकोचवश कोई उस पर बैठने का साहस न करता था। युवक स्थान ख़ाली देख कर चट वहाँ जा पहुँचा। उसने भद्रतापूर्ण शब्दो मे युवती से कहा, "श्रीमती जी! यदि आप को आपत्ति न हो तो मै इस ख़ाली स्थान पर बैठ जाऊँ।"

युवती ने निस्सकोच शब्दो मे उत्तर दिया, "वाह! आपत्ति कैसी? जगह ख़ाली है तो आप ख़ुशी से बैठें। मैने सब थोड़े ही रिज़र्व कराया है।"

'धन्यवाद'—कह कर युवक सकुच कर एक कोने में बैठ गया और खिड़की से बाहर सिर निकाल कर सिगरेट पीने लगा। सिगरेट हवा से जल्दी ख़तम हो गई। अब उसने खिड़की से मुँह फेर लिया। दूसरी सिगरेट जलाने लगा। सिगरेट जली। उसने सामने के बेंच पर बैठे लोगो से बात-चीत छेड़ी।

"कहिए साहब, आप कहाँ तशरीफ़ ले जा रहे है?"

मौलाना ने एकाएक होश में आकर कहा, "मै ? मै, यो ही रा जॅघई तक जा रहा हूॅ।"

"जॅघई। कही और आगे जॉयगे या वही उतर पडेंगे ?"

टोपी सॅभालते हुए मौलाना ने उत्तर दिया, "नही, जाना तो नारस तक है।"

युवक निरुत्तर सिगरेट पी रहा था। उसकी दियासलाई वेंच के नीचे गिर पड़ी। युवती ने चट उठा कर उसके हाथो मे दे देया। युवक मानो कुछ सोच रहा था। उसने चौक कर कहा, 'धन्यवाद! धन्यवाद! आपने क्यो कष्ट किया ?"

"नही नही, कष्ट काहे का ?" युवती यह कहती हुई कुछ झेंप गई।

युवक ने कुछ साहस करके पूछा, "क्या मै पूछ सकता हूॅ, आप कहॉ जा रही है ?"

युवती—"मै काशी जाऊॅगी।"

युवक ने सलाई जलाते हुए पूछा, "काशी या बनारस कैन्ट— आप कहाँ उतरेंगी ?"

युवती—"मुझे बनारस जाना है—उसी को काशी कहते है।"

युवक मुस्कराने लगा, बोला, "जान पड़ता है आप पहले पहल वहॉ जा रही है। काशी और बनारस कैन्ट दो स्टेशन है। आप कहॉ जा रही हैं ?"

युवती ने कुछ घबराहट प्रदर्शन करते हुए कहा, "क्षमा कीजिये, मुझे मालूम नहीं था, वहाँ दो स्टेशन है! मै तो पहले पहले वहॉ जा रही हूॅ। मुझे वहॉ मिस्टर सिन्हा एम०एम०, एल-एल० बी० के यहॉ जाना है। वे काली महल मोहल्ले मे रहते है।

युवक ने पूछा, "आप वहॉ किसी काम से जा रही है ?"

युवती इस प्रश्न पर लज्जित हो गई। उसके चेहरे पर सुर्खी दौड़ गई। उसने अपने को सॅभाल कर कहा, "कोई विशेष काम

तो नहीं है। मै अपने श्वसुर के घर जा रही हूँ। यहाँ मै विद्यापीठ मे रहती हूँ। छुट्टियो मे घर जा रही हूँ।"

युवक ने विषय परिवर्तन कर दिया, और उसने पूछा, "आप किस क्लास मे पढ़ती हैं।

युवती ने मुसकुराते हुए कहा, "मै वहाँ अध्यापिका हूँ।"

"अध्यापिका ! बड़ी प्रसन्नता की बात है", युवक ने मुसकरा कर कहा और सामने बेंच पर बैठे मुसाफिरो को देखने लगा। मौलाना ने झट उसकी ओर से आँखें फेर ली। उनके साथ बैठे, एक बाल-सँवारे बङ्गाली, अभी युवती को ध्यान मग्न हो देख रहे थे। दूर-बेंच पर बैठे दो सूट-बूट धारी बाबू खिसक कर अधिक पास-पास बैठ गये थे। उनकी बातें इतनी धीरे-धीरे हो रही थीं कि गाड़ी की घड़घड़ाहट मे सुनाई नहीं पड़ती थी। किनारे बैठे एक पुराने वज़अ के 'मुन्शी जी' कोई अखबार पढ़ रहे थे। शायद 'लीडर' था। युवक ने उन्हे संबोधन कर कहा, "जनाव ! अगर तकलीफ न हो तो एक पेज मुझे बढ़ा दीजिए। 'लीडर' ही है न। ज़रा देखूँ तो, एम० सी० सी० मैच का क्या प्रोग्राम है।"

मुन्शी जी ने मानो सुना ही नही। युवक अपनी उत्सुकता न रोक सका। उसने पास पहुँच कर देखा तो मुन्शी जी 'लीडर' मे छेद कर युवती को देखने मे मस्त थे। उनका ध्यान टूटा तो वे हड़बडा कर उठ बैठे और टिकट ढूँढ़ने लगे। उनका 'कामिक पार्ट' देख गाड़ी मे बैठे लोग आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगे। युवक ने 'लीडर' उठा कर एक सरसरी दृष्टि डाली और लौटकर अपने स्थान पर बैठ गया। अँधेरा हो चला था। गाडी की बत्तियाँ जल गई थीं। संध्या की सर्द हवा को रोकने के लिए लोग खिड़कियाँ बन्द करने लगे थे।

युवती ने कम्बल निकाला और पैरों पर डाल कर बैठ गई।

बिजली की रोशनी मे वह कमरे मे जगमगा रही थी। लोगो की निगाह रह-रह कर उसी पर पडती थी। बगल मे बैठा युवक मानो दम पर दम सिगरेट जला कर अपने को गर्म का रहा था। युवती चुपचाप कुछ गुन-गुना रही थी मानो वह अपने को अकेली समझ रही हो। उसने एकाएक युवक की ओर देखा और आश्चर्य से पूछने लगी, "क्यो आपके पास बिस्तर वगैरः नही है ? आप को सरदी लग रही होगी।"

युवक ने लापरवाही से कहा, "नही, कोई हर्ज नही। मै यो ही चल पड़ा। जल्दी में ओवर कोट भी भूल गया।"

युवती ने कहा, "ख़ैर कोई हर्ज नहीं—मेरे पास एक फ़ालतू कम्बल है। आप तक़लीफ क्यो उठाते हैं ?" उसने बिस्तरे से दूसरा कम्बल निकाला और युवक को देकर पूछने लगी, "आप को कहाँ जाना है ?"

युवक ने कम्बल न लेने का उपक्रम करते हुए कहा, "आप क्यो तक़लीफ करती हैं। हाँ, मुझे भी बनारस कैन्ट ही उतरना है।" उसने कम्बल लापरवाही से अपने पैरो पर डाल लिया।

युवती ने आत्मीयता दिखाते हुए पूछा, "आपको भी बनारस जाना है। आप वही के रहनेवाले है ? किस महल्ले मे रहते है आप ?"

युवक ने कुछ लज्जा, कुछ साहस के आवेश मे कहा, "मै भी अपने एक मित्र के यहाँ जा रहा हूँ। वे औरंगाबाद महल्ले मे रहते हैं।"

युवती बोली, "चलिए, अच्छा ही हुआ, मै आप ही के साथ उतर जाऊँगी। मै तो अकेली घबरा रही थी कि रात को कैसे जाऊँगी।" अब दोनो घुल-मिल कर बातें करने लगे। पढ़ने-लिखने की बाते आरम्भ हुईं। मालूम हुआ—युवक भी कालिज का अध्यापक है। साहित्य चर्चा आरम्भ हुई—युवती ने अपनी

कविताएँ सुनाईं—कोमल और मधुर स्वर मे गाकर। युवक दाद देने लगा। डिब्बे मे बैठे लोग आश्चर्य से आँखें फाड़-फाड़ कर देख रहे थे। वे सब भी खिसक कर पास-पास बैठ गये थे। गाड़ी में मानो दो पार्टियाँ हो गई थी। युवक युवती को मानो इससे वास्ता नहीं—वे अपनी धुन मे मस्त थे। कविता से उपन्यास, गल्प, नाटक, समालोचना आदि विषयो पर वार्तालाप हुआ। दोनो अपना-अपना पक्ष ले कर विचार करते, झगड़ते और कभी-कभी आवेश मे भी आ जाते। अब विषय बदल कर 'सेक्स' पर जा पहुँचा। सन्ताननिग्रह पर विवाद छिड़ पड़ा। युवती पक्ष मे थी, युवक विपक्ष मे। दोनो अपने-अपने पक्ष का यथाशक्ति समर्थन कर रहे थे।

युवक ने व्यङ्ग मे मुस्करा कर कहा, "आजकल की देवियाँ स्वार्थवश इसका समर्थन करती है।"

युवती ने मुँहफट उत्तर दिया, "और आजकल के नवयुवक क्या परमार्थवश उसका विरोध करते है!"

युवक परास्त हो गया। उसने कहा, "मानता हूँ। पर उसमे हमारा न स्वार्थ है न परमार्थ!"

युवती ने पूरी बात न सुन कर बीच मे कहा, "तो फिर आप लोग इसके विरुद्ध क्यो हैं? यह तो स्त्रियो के सम्बन्ध की बात है, वे ही इसका निर्णय करेंगी। आप लोग क्यो आचार और धर्म की आड़ लेकर उसका विरोध करते है?"

युवक ने हाथ जोड़कर कहा, "अच्छा देवी जी, मै हार मानता हूँ।"

युवती ने लज्जित होकर उसका हाथ पकड़ लिया। बोली, "वाह! आप भी क्या करते हैं! यह तो विवाद मात्र था।"

बचे-खुचे मुसाफिर चित्र की भाँति यह सब देख रहे थे। केवल उनकी आँखें इधर-उधर घूमतीं, एक-दूसरे से मिलती और जाने क्या कहती, समझती और मुस्कुराती थी।

गाडी अब जॅघई पहुॅच कर रुक गई थी। प्लेटफार्म पर 'गरम चाय,' 'पूरी', 'मिठाई', 'पान', 'दहीवड़े' की आवाज़ सुनाई पड़ने लगी। लोग खाने-पीने की चीज़ें खरीदने मे लगे। युवक ने पानवाले को बुलाया और पान लिये।

युवती ने कहा, "कुछ खा लीजिए, फिर पान खाइयेगा।"

युवक ने प्लेटफार्म की ओर देखते हुए कहा, "यहाँ तो कोई चीज़ अच्छी मिलती नही, कौन बखेड़ा करे, बनारस पहुॅच कर खाऊँगा।"

युवती—"अजी, खरीदने की क्या आवश्यकता है? खाना मेरे साथ है। काफी है। यदि आप को आपत्ति न हो तो आइये उसमे से लीजिए थोड़ा सा।"

युवक—"वाह आपत्ति कैसी, लेकिन मुझे भूख नहीं है।"

युवती ने आग्रह करते हुए कहा, "भूख क्यो नही है? आपको खाना पडेगा।" उसने युवक का हाथ पकड़ कर बैठाते हुए कहा, "आइये, संकोच न कीजिये।" गाड़ी धीरे-धीरे जॅघई से बाहर हो रही थी। युवती ने बेञ्च पर खाना फैला दिया। लोग अपने अपने बेञ्चो पर खाने की तैयारी मे थे। युवक संकोच-वश अस्वीकार न कर सका। वह भी खाने को तैयार हुआ। दोनो खाने बैठे।

युवक ने कहा, "श्रीमती जी! मुझे थोड़ा सा दे दीजिए।"

युवती ने खाने की चीजें रखते हुए कहा, "खाइये इसीमे से।" और वह खाने लगी। युवक ने भी खाना आरम्भ किया, मौलाना अपनी रोटी हाथ मे लिये ग़ौर से उनकी ओर देख रहे थे मानो हिरन अपना चारा भूल गया हो। दोनो खाने लगे, हॅसने लगे, आपस मे पूरियो की खींचातानी करने लगे। आखिरकार युवक ने हाथ खीच लिया। युवती ने यह देख खाने का आग्रह किया। अत मे वह उसके मुॅह मे कौर ठूॅसने लगी। युवक 'नही,

नहीं' करने लगा। उसने कहा, "और आप भी तो कुछ खाइये। वाह! आपने तो कुछ खाया ही नही।" युवती जल्दी जल्दी खाने लगी। युवक धीरे-धीरे उसका साथ देने लगा। पानी का गिलास एक ही था। युवती ने युवक को गिलास देते हुए कहा "लीजिए पानी।" युवक ने हाथ से लेकर कहा, "और आप किससे पियेंगी।"

"पीजिए भी", युवती ने प्रेम से डाँट कर कहा, और वह भोजन समेट कर कटोरदान में रखने लगी। युवक ने गिलास खाली कर रख दिया और हाथ धोकर पान सँभालने लगा। युवती ने गिलास भर कर जल पिया और पीकर पूछने लगी, "क्षमा कीजियेगा, मैंने आपका जूठा पी लिया। क्या मैं पूछ सकती हूँ आप कौन हैं?"

युवक ने घबरा कर कहा, "मैं—आप जाति पूछती हैं—मैं क्षत्रिय हूँ।"

युवती ने सन्तोष की साँस लेते हुए कहा, "यह अच्छा हुआ।"

युवक ने युवती को पान बढ़ाते हुए कहा, "लीजिए यह मेरी ओर से।"

युवती ने चमकते हुए दाँतो को निकाल कर उत्तर दिया "मैं तो पान खाती नही, क्षमा कीजिये।"

युवक ने आग्रह करते हुए कहा, "कुछ भी हो, पर यह तो खाना ही पड़ेगा। आपने अपना खाना खिला दिया, पानी पिला दिया, क्या मेरे दो बीड़े पान भी न खायगी आप?"

युवती असमंजस मे पडी खडी थी, युवक ने पान उसके मुँह मे ठूँस दिये। युवती उन्हे दाँतो मे दबाये नीचे की ओर देखने लगी। युवक अपने स्थान पर बैठ गया। मौलाना आपे से बाहर हो रहे थे। बंगाली बाबू सिर खुजलाते हुए दूसरी ओर

देखा करते थे। दूर बैठे मुंशी जी सरदी से सिकुड़े हुए ऊँघ रहे थे।

युवक ने कम्बल लपेट कर झपकी लेनी आरम्भ की। युवती भी आलस से अँगड़ाने लगी। उसने युवक का कंधा हिला दिया। वह चौंक पड़ा। घबरा कर उसने कहा, "क्या बनारस आ गया?"

युवती उसकी घबराहट पर खिलखिलाकर हँस पड़ी और लगी कहने, "नींद लगती हो तो लेट जाइये, लीजिये यह तकिया।" उसने तकिया बेंच के बीचोंबीच रख दिया। युवक अलसाया हुआ चुपचाप कम्बल तानकर एक ओर लेट गया। युवती भी लेटने की ताक में थी। उसने इधर-उधर देखा, मौलाना और बंगाली बाबू कम्बल ताने लेटे थे। वह भी दूसरी ओर लेट गई, उसी तकिये के एक कोने पर सिर रखकर। फिर कम्बल तानकर मानो वह सो गई थी।

मौलाना जग पड़े थे। लगे कहने, "देखते हैं जनाब! क्या दुनिया है! देखते देखते यह हालत!"

बङ्गाली बाबू जरा उर्दू कम समझते थे, पर इस समय मतलब समझने में उन्हें देर न लगी। लेटे-लेटे बोले, "खाँ साहब, सच कहते हो, हमारा देश में ऐसा नहीं होने का—यह आप लोगों के देश में देखने मिलता है।"

मौलाना को बङ्गाली बाबू का यह आक्षेप अच्छा न लगा। वे अपनी सन की तरह सफेद दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहने लगे, "खुदा की कसम, यह बात नहीं है। हमारे मजहब में अगर ऐसा हो तो बस उसे काफिर करके निकाल दें। यह सब हिन्दुओं में ही होता है।"

बङ्गाली बाबू बोले, "ठीक कहते हो खाँन साहब। यही तो पढ़ाई-लिखाई का रिजल्ट है।"

मुंशी जी की नींद अब टूट गई थी। वे भी खिसककर पास

आ बैठे थे—लाला कहेन, 'न हिन्दू का न मुसलमान का सवाल है, और न इस देश उस देश का। यह नई रोशनी की करामात है जनाब! आजकल के पढ़ने लिखनेवाली लड़कियाँ जो न करें सो थोड़ा। देखते है खाँन साहब!"

खाँ साहब—"यार! हम लोग आज तक कामयाब न हुए। यह लौंडा आया और शिकार हाथ लगा।"

मुंशी जी—"अजी बुढ़ापे मे हमे कौन पूछता है?"

बंगाली तोंद पर हाथ फेर रहा था, बोला, "सो बात नई है खाँ साहब जवानी मे मैंने वह-वह रोमॉस किया है कि आजकल का छोकरा क्या करने सकता।"

युवक ने युवती को शायद कुछ छेड़ा था। उसने नींद में जोर से डॉट कर कहा, "हटो भी।" यह सुनते ही सब सिट हो गये। तीनो ने अपने अपने ओढ़ने तान लिये। युवक ने युवती के मुख पर हाथ रख कर उसका मुख बन्द कर दिया—वह कुछ बोल न सकी। दोनों फिर चुप मानो सो रहे थे।

गाड़ी बनारस कैन्ट मे दाखिल हो रही थी। कुलियो की आवाज सुनाई पड़ने लगी थी। लोग उठ कर अपना असबाब सॅभालने लगे थे। तीनो को शायद यही उतरना था। ट्रेन रुकी। युवक ने युवती को जगाया। गाडी के सामने प्लेटफार्म पर उसे मानो कोई लेने आया था। बिजली की बत्ती उसके सिर पर चमक रही थी।

"आख़ा जनाब मौलाना साहब, आदाबर्ज!", किसी ने हाथ बढ़ा कर कहा। मौलाना अपना बँधना लिए गाडी से उतर रहे थे। उन्होने देखा सामने रायसाहब खड़े है। उतर कर बँधना प्लेटफ़ार्म पर रख, उन्होने हाथ मिलाया और मिजाजपुर्सी करने लगे। कुली असबाब उतारने मे लगे। युवक ने उतर कर राय साहब के पैर छुए। उन्होने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा,

अच्छा चलो, गाड़ी बाहर खड़ी है। मैं तांगे से आ जाऊँगा।"

युवक चुपचाप चल दिया। युवती उसके पहले ही आँख बचा कर आगे निकल गई थी। दोनों बाहर पहुँच गाड़ी पर असबाब लदाने लगे।

मौलाना अभी खड़े हुए रायसाहब से बातें कर रहे थे। एकाएक उन्होंने पूछा, "यह लड़का कौन था जिसे आपने अभी गाड़ी पर भेजा है?"

रायसाहब ने हँसते हुए कहा, "वाह! आप नहीं पहचानते? उस समय यह चार साल का था। यह वही मदन है।"

मौलाना ठक से रह गये, पर अपने को सँभाल कर हँसते हुए बोले; "मदन! अरे वही भोलाभाला मदन! मैंने तो उसे पहचाना ही नहीं। यह मेरे ही साथ इसी गाड़ी में आ रहा था।" मौलाना कुछ और कहने ही वाले थे कि राय साहब ने उसके पहले ही कहा, "यह अपनी बहू को लिवाने इलाहाबाद गया था। आजकल इस का अपोइन्टमेन्ट यहीं पर हुआ है न।"

'अपोइन्टमेन्ट—" मौलाना के मुँह से इतना ही निकल सका था कि रायसाहब ने कहा, "आप को नहीं मालूम—यह आजकल यहाँ कालेज में 'लेक्चरर' है।"

गाड़ी स्टेशन से चली गई थी।

मौलाना की बेबसी

मेरी साइकिल चौक के पहले चौराहे से मुडने ही वाली थी कि मेरी निगाह सामने के एक व्यक्ति की परिचित चाल की ओर आकृष्ट हुई। 'अरे—यह तो मौलाना है!—पर इस प्रकार लथपथ, परेशान!'

मुझे कुछ भय, कुछ कुतूहल, कुछ गुदगुदी सी हुई। मैंने पैडिल जोर से मारा और 'मौलाना!' की पुकार मचाता तेजी से आगे बढ़ गया। अभी मौलाना सड़क पारकर पटरी पर नहीं पहुँचे थे, उनकी एक टाँग नाली के इस पार, दूसरी उठकर उसे लाँघने ही वाली थी कि मेरी साइकिल उनके पीछे रुकी। एकाएक साइकिल का रुकना और मेरा उतरना, मौलाना ने चौंककर पीछे देखा। उनकी आँखो से आशंका झलक पडी। मुझे देखते ही उनके चेहरे पर रौनक दौड गई। राहत की साँस लेकर वे बोले—"अच्छे मिले भाई, मैं तो बडी मुसीबत मे बचकर आ रहा हूँ।"

"खैरियत तो है!"—मैंने घबराहट प्रदर्शित करते हुए पूछा, पर पेट मे चूहे कूद रहे थे कि कोई पुरमजाक वाकिया होगा।

"अरे कुछ पूछिये नहीं—बस आप लोगो के साथ अभी कुछ दिन और रहने का सौभाग्य है—नहीं तो आज मैं नयनी जेल मे होता।"

"जेल मे? क्या फिर जेल जाते जाते बचे?"—मैंने कुछ विनोद भरी आवाज से पूछा।

"आप जा किधर रहे है?"—मौलाना का लहजा एकाएक

बदल गया, जैसे कोई बात ही नहीं थी। मैंने कहा, "कहीं जा तो नहीं रहा था। अच्छा चलिए, घर ही चलें। आपको कोई खास काम तो नहीं है?"

"कुछ नहीं, कोई काम नहीं इस वक्त तो मैं—समझ लीजिए भागा हुआ घर ही जा रहा था—"

"तो आइए, मेरे यहाँ चलिए, वहीं बैठकर बातें होंगी।"—

दोनों चल पड़े। साथ में साइकिल थी।

"क्या लोग मुशायरे में पकड़े किये जा रहे थे?"

"लानत भेजिए मुशायरे पर। राजा, पुलिस के फेर में पड़ गया था!"

"पुलिस!—आप जैसे शायरों का पुलिस से क्या ताल्लुक?"

"हा हा! यही तो ताअज्जुब की बात है!" मौलाना की हँसी कमरे में गूँज उठी। मैं अधिक उत्सुकताभरी निगाह और विचार-रहित मन से उनकी ओर देख रहा था।

वे कहने लगे, "भाई साहब किस्सा कोताह यों है कि मैं चोरी के जुर्म में बच गया।"

"चोरी!" मैंने आश्चर्य से आँखें फाड़कर देखा। मौलाना

मुस्करा रहे थ।

यह पहेली मैं न सुलझा सका।

वे कहने लगे, "ह-ह-ह! और क्या आप इस पर यकीन नही करते ?" मै क्या उत्तर देता।

मौलाना ने गंभीर मुद्रा बना ली, जैसे कोई भारी काम कर आये हो और बोले, "लेकिन मै भी कोई ऐसा-वैसा आदमी नहीं हूँ। सैकड़ो को चरा चुका हूँ। पुलिसवाले अपने को समझते क्या है।"

"पुलिस ?"—मेरे मुँह से केवल इतना ही निकल सका।

"पुलिस—जी हाँ! पुलिस! एक दारोगा साहब थे। अपने को बड़ा काइयाँ समझते थे, पर मैने ऐसा झपट दिया कि वे ज़िन्दगी भर याद करेंगे।"

मै चुपचाप सुनने लगा। कुछ समझ मे नही आ रहा था।

मौलाना ने मेरे कान के पास मुँह लाकर धीरे से कहा, "भाई साहब, आप तो जानते है मै आपसे कोई बात छिपाता नहीं। बात यह है कि उस दिन मोहम्मद अली पार्क से जो जलसा था—"

"हाँ, हाँ, वही पैलेस्टाइन दिवस।"

"जी हाँ!"—मौलाना ने कहा, "और उस दिन—"

मैने बीच मे टोककर कहा, "क्या आपने कोई ऐसी-वैसी तकरीर कर डाली ?"

"अजी तोबा करो—ऐसी भूल मै नही करने वाला। हाँ, तो उसी दिन भीड़ हट जाने पर मुझे वही घास मे एक घडी पडी मिली और घडी ऐसी वैसी नही—सोने की, कलाई वाली—"

"कीमती रही होगी ?"—

"कीमती—कोई पाँच सौ से कम की नहीं—पर मेरे लिए तो ठीकरे के समान थी—"

"हाँ, दूसरे की चीज़—"

"पर मैं किसे देता—मैंने सोचा इसे थाने पर जमा कर दूँ।"

"ठीक ही सोचा।"

"ठीक क्या ख़ाक सोचा था—शामत थी।"

"शामत थी?"

"और नहीं क्या—चील के घोसले में मांस पहुँचाना—पर मैं थाने पर पहुँचा।"

"अच्छा!"

"तो वहाँ का हाल सुनिए—थानेदार साहब बैठे गप्पें मार रहे थे। दो कानिस्टिबिल फाटक पर सुरती फाँक रहे थे। मैंने पूछा कि थानेदार साहब हैं।"

"क्या काम है?"—दोनों ने एक साथ पूछा—जैसे मैं कोई फरयाद लेकर आया था।

"कुछ नहीं, एक काम है"—मैंने कहा।

" 'क्या काम है—मुझसे कहो—' दोनों मेरे पीछे पड़ गये। मैंने कहा, "तुमसे क्या कहूँ सीधे थानेदार साहब के पास जाना चाहता हूँ।" हुज्जत होने लगी—मैंने दोनों से पिण्ड छुड़ाया—भीतर थाने में धँस पड़ा। जाकर पहुँचा जहाँ थानेदार बैठे गपशप मारते हुए सिगार फूँक रहे थे। मैंने पहुँचते ही कहा—'जनाब' के पास यह घड़ी जमा करना चाहता हूँ। यह किसी भले आदमी की है। मैंने इसे मोहम्मद अली पार्क में पाई है—अभी उस जल्से के बाद—'

"मेरे मुँह से इतना निकला ही था कि थानेदार ने घड़ी को गौर से उलट-पुलट कर देखा, और कहने लगा—'तो आप उस जल्से में शरीक थे?'—

'मैंने कहा, 'जी हाँ. इससे क्या—मैं घडी देने आया हूँ—'

" 'किसकी घड़ी है?' थानेदार ने पूछा—

"मैं क्या बतलाऊँ।"

"'कहाँ पाई आपने ?'

"मोहम्मद अली पार्क में।'

"'किस जगह ?'

"घास पर।"

"'घास पर किस जगह ?' उसने डाँटकर पूछा। मुझे निहायत बुरा लगा

"पार्क की घास पर"—मैंने बेमन से कह दिया।

"'मैं पूँछता हूँ—पार्क के किस कोने मे ?'

"मैने पार्क का जुग़राफ़िया नहीं रटा है—थानेदार साहब।" मैंने कहा।

"'सुनिये जनाब—मज़ाक नहीं है, आप एक कीमती चीज पाते है और आपको पता नही कहाँ पाते है। अच्छा, आपका नाम ?'—नोट-बुक निकाल ली।

"मै थरथरा उठा पर मै सँभल गया—पिछले तर्क मवाला के दौरान मे सैकड़ो ऐसे मौको का सामना कर चुका था।"

"थानेदार ने पूछा, 'आपका नाम ?'

"मैंने नाम बतला दिया। उसने पूछा, 'बाप का नाम ?'—क़सम ख़ुदा की मुझे इस बेतुकेपन पर ताव आ गया। मेरे वालिद मजीद की यह तौहीनी! पर लाचार था। मैंने जवाब दिया, 'लिख लीजिए—बुज़ुर्गेहिन्द, नवाब, मौलाना, हाजी, सैयद, जनाब,...'

"थानेदार इस पर बिगड़ खड़ा हुआ, बोला, 'सीधा-सादा नाम बतलाइए; हमें अलकाब आदाब नही चाहिए।'

"'तो फिर आप अपने वालिद का नाम लिख लीजिए—वही बिना अलकाब आदाब के पुकारे जा सकते है'—मैंने हिम्मत बटोर कर कहा।

"'देखिए'–थानेदार ने इस रोब से कहा जैसे मैं कोई मुलजिम था, आप सीधे-सीधे नाम बतलाते है या हम आपको चोरी के जुर्म में हिरासत मे ले' ?

"हिरासत ?"—मेरे मुँह से निकल पड़ा और मैं चकराकर मौलाना का मुँह देखने लगा।

"जी हां !-भाई साहब हिरासत !"—मौलाना ने अपनी समस्त हँसी मे हँसकर कहा, "ह-ह-ह हिरासत—और आप क्या समझते है ? उसने मुझे हिरासत मे रखने की धमकी दी। पर मै क्या उसकी धमकी मे आनेवाला था—सैकड़ो बार हिरासत की धमकी देख चुका हूँ। हमारे जैसे तालुकदारो को हिरासत का डर दिखाना हिमाकत है।"

"फिर क्या हुआ" ?—मैंने किस्से को तय करना चाहा।

मौलाना कहने लगे, "हां तो भाई साहब, मैंने निडर होकर कहा, 'जनाब थानेदार साहब, आप अपने होश का इलाज करें। यह घड़ी आप के पास जमा करता हूँ। मुझे रसीद दीजिए और जिसकी हो उसके हवाले कर दीजिए।' यह कहकर मै चलने को हुआ। थानेदार ने रोब से कहा, 'अजी हजरत ! ठहरिए भी—आप चले कहाँ ? मज़ाक करने आये है ! मुझे तहकीकात करने दीजिए। पहले मेरे सवालात का जवाब ठीक-ठीक दीजिए—' मै लाचार था। बोला—'पूछिए !' वह पूछने लगा।

" 'आप क्या करते है ?'

"मैं शायर हूँ।"

" 'शायर !—तो यो कहिए आप कुछ करते-धरते नही।'

"इसमे बहस ? मै आवारा हूँ।"

" 'ख़ैर—आप रहते कहाँ हैं ?'

"मैंने पता बतला दिया।

" 'तो आप वहां रहते हैं'—उसने सिर हिलाया। मुझे बहुत

बुरा लगा, पर सब्र कर गया।

" 'जब आपने घड़ी पाई तो क्या बजा रहा होगा!'

"मैं ठीक-ठीक नहीं बतला सकता।"

" 'बारह बजे रात?'

"होगा—मुझसे कोई जवाब नहीं देते बना।

" 'उस वक्त आप पार्क मे क्या कर रहे थे?—

"कुछ कर रहा था—आप ऐसे सवालात क्यो करते हैं—

" बस! आप अकेले हैं? आपकी बीवी है?'

"नही—

" 'तभी आप इतनी रात पार्क मे सैर करते हैं,—थानेदार ने सिर हिलाकर कहा। उसकी यह अदा मुझे बहुत खली।

"मै चलने पर आमादा हुआ। उसने डांटकर कहा, 'ठहरिए—हाँ, यह तो बतलाइए—कभी आपका चालान हुआ था?—अब तो मेरी बरदाश्त के बाहर की बात हो गयी। मैंने कहा, 'अजी आप एक शरीफ आदमी से बातें करने की तमीज़ सीखिए।'

"उसने गौर से मेरी ओर देखा—जैसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो। एकाएक जैसे उसे याद आगया हो, 'ठीक—मैंने अब पहचाना।'

"क्या पहचाना?—मैंने पूछा।

" 'ज़रा इधर तो आइए'—थानेदार मुझे इशारा करके अपने दफ्तर की ओर चला। कमरे मे पहुँचकर उसने कहा, 'तो इसका क्या सबूत है कि आपने घड़ी चुराइ नहीं?'

'चुराई?' मैं अवाक् रह गया।

" 'हाँ, जनाब—क्या सबूत है कि आपने इसे चुराई नही—उसने फिर दोहराया।

"कैसी बाते करते है आप। यह घड़ी मैंने पार्क मे पड़ी पाई है।

"क्या सबूत है कि आपने घड़ी पड़ी हुई पाई ?" मैं चकरा गया।

"थानेदार ने कहा, 'ख़ैर यह आपका पहला जुर्म है इसलिए मैं आप को छोड़े देता हूँ। बस आइन्दा ऐसी हरकत न कीजिएगा —भूलकर।' मै चुपचाप सुन रहा था। थानेदार ने कहा, 'देखिए—अगर किसी को इसकी खबर लगी तो आप फिर बच नही सकते—ख़ैर, आप जा सकते हैं।'—"

मैंने पूछा, "तो आपने क्या जवाब दिया मौलाना।"

मौलाना कहने लगे, "क्या कहता, मैंने झुककर सलाम किया और वहाँ से सीधा बाहर पहुँचा और कानिस्टिबिलो से चलते-चलते कह आया, 'देखो, जाकर कह देना थानेदार साहब से कि उनकी खैरियत नही। वे अपने को समझते क्या है।' दोनो ने न जाने क्या समझा। पर मैंने अब तय कर लिया है कि अगर कभी दूसरी घड़ी मिली तो उसे कभी थाने पर जमा करने न जाऊँगा। कम्बख्त—"

मौलाना का चेहरा गुस्से से लाल हो गया। वे कहने लगे, "कभी न जमा करने जाऊँगा। देखें वे कैसे मुझ पर चोरी का इलजाम लगावेंगे।"

मैने मौलाना को धीरज धराना चाहा, पर वे कहने लगे—"भाई साहब—मैं क्या चोर हूँ—यह थानेदार समझता क्या है अपने को—बेटा, अब कभी मुझे थाने के भीतर देख पावें—" और वे दाँत पीसकर मेरी ओर ऐसे देखने लग मानो मै ही थानेदार हूँ और वे मुझ पर चोट कर बैठेंगे।

मैने कहा, "जाने भी दीजिए मौलाना—"

"जाने क्यो दे"—उन्होने झिड़क कर कहा।

और बेबसी से वे कमरे मे चक्कर काटने लगे।